CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

6.5

जीवन-परिमल

१९९० १—३

— विषय —

श्र० विमलाजी ठकार का शब्दाङ्कित चिन्तन : अध्यात्म-समग्रजीवनशील
(—तदन्तर्गत मानवीय जीवन-विकास एवं राष्ट्र तथा विश्व के हित—)
के सन्दर्भ में, तदनुरूप एवं आनुषङ्गिक समानधर्मी विशिष्ट चिन्तन

"जिज्ञासा के चक्षु जब भीतर झाँकने लगेंगे तब आप पाइयेगा कि जिज्ञासा की विकलता में ही अनुभूति के उन्मेष छिपे हैं। जिज्ञासा समस्या को विनम्रता से देखने लगे तो अनुभूति के अंकुर उसमें से फूटने लगते हैं। अनुभूति के लिये दूसरी भूमि की जरूरत नहीं। धरती जिज्ञासा की हो, जल विनम्रता का हो, हो जाइये अन्तर्मुख।""जिज्ञासा की छटपटाहट ही प्रभु-प्रेम का विरह है। उसकी विकलता अनुभूति के आगमन की आहट है। यह कोई काव्य नहीं, जीवन का तथ्य है।

[विमलवाणी : 'सख्यसंवाद' में से उद्धृत]

सत्य करुणा प्रेम

सख्य सहयोग सहजीवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षज आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥"

[विश्व का कल्याण हो, खल (दुष्टजन) भी प्रसन्न हों (ऋजु-सरल सौम्य भाव वाले हो जायें) सभी प्राणी परस्पर के हित व शुभ का चिन्तन करने लगें। हमारा मन भद्र (भले) का ही सेवन करे, हमारी मति भी अहैतुक भाव से (किसी कामना या प्रयोजन-सिद्धि के लिये नहीं, बल्कि सहज प्रेमवश) भगवान् में ही रमी रहे, उन्हीं में बसी रहे।]

(श्रीमद्भागवत)

"औरों को हँसते देखो मनु! हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो; सब को सुखी बनाओ॥"

—प्रसाद

सङ्कट नहीं सुमङ्गल अवसर

—विमला

"प्रत्येक सङ्कट, प्रत्येक समस्या प्रभु का सङ्केत है कि उठो! बहुत सोये, तन्द्रा में, मूर्च्छा में रहे हो, अब जाग उठो! अपने सत्त्व को पहचानो और जीने लगो! सङ्कट या समस्यायें तो जीने का आह्वान हैं! हम ग़फलत में—प्रमाद में पड़कर भटक जाते हैं, जीना भूल जाते हैं तब वापस जीने के कर्म में हमको लगाने के लिये सङ्कट आते हैं—कन्धे पकड़कर हिलाते हैं। इसे समझकर हम सावधान होकर जीने की राह पकड़ लें!"

[युवकों के प्रति स्नेह-संवाद में से]

"विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो!
भवतो दर्शनं यत् स्याद् अपुनर्भवदर्शनम् ॥"

[कुन्ती ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि हे जगत् का अन्धकार मिटाने वाले भगवन्! हम पर सांसारिक विपत्तियाँ बारम्बार आती रहें; जिनमें कि आपका (उत्कट स्मरण होने से) दर्शन मिलता रहे, और (इसी आपके स्मरण व दर्शन के सहज परिणामवश) पुनः पुनः जन्म-मरण (रूपी संसृति) का दर्शन न हो।]

(श्रीमद्भागवत)

तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानवीय जीवन का दार्शनिक आधार

—विमला

हम लोग एक ऐसे युग की दहलीज़ पर खड़े हैं जहाँ विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय-रूप एक नया ही जीवन-दर्शन जन्म लेने वाला है। ऐसे एक युग के प्राङ्गण में सारी मनुष्यजाति खड़ी है जहाँ हजारों-लाखों वर्षों से जो संगठित-संस्थाबद्ध धर्म (Organised & institutionalised Religions, different in their denominations) चले आ रहे हैं, साधनपद्धतियाँ चल रही हैं—उन संगठनों व सम्प्रदायों का विलय होते हुए एक उज्ज्वल मानवधर्म का उदय हो रहा है। स्थान और काल के सापेक्ष जो विभिन्न अनेकों संस्कृतियाँ पनपी थीं वे सब लुप्त होकर एक मानवीय संस्कृति जन्म लेने वाली है। इस मानवधर्म और मानवीय संस्कृति का यदि कोई सुदृढ़ स्थायी आधार या अधिष्ठान हो तो वह वेद-उपनिषदों का है। वैदिक दर्शन (वेद-संहिता-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद् और उन पर आधारित षड्दर्शन) में एक पराभौतिक एवं क्रान्तदर्शी दार्शनिक अधिष्ठान मानवजाति को मिला हुआ है वह वैदिक दर्शन की विरासत केवल भारतवासियों को ही नहीं है, ये 'हिन्दु'ओं की मिल्कियत (सम्पत्ति) नहीं है। 'हिन्दू'-समाज तो वैदिक दर्शन के आविर्भाव व विकास के बहुत समय बाद अस्तित्व में आया। वेद अपौरुषेय हैं या नहीं, उनका दर्शन-संग्रथन-लेखन कब कहाँ—किसने किया—यह प्रस्तुत संदर्भ में चर्चा का विषय नहीं, किन्तु मानव और मानवता का गौरव, मानवीय मूल्य, उन मूल्यों पर आधारित समाज-रचना—अर्थ-नीति—राज्य-व्यवस्था से बनी मानवीय-संस्कृति को विश्व में वैदिक-दर्शन के सिवा कहीं भी आधार नहीं मिल सकता।

विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय यदि होना होगा तो एक ओर पदार्थविज्ञान एवं गणित (Physics & Mathematics) और दूसरी ओर वैदिक दर्शन का अध्यात्म—इन दोनों का मिलन होगा।

The science of Physics is really at the threshold of Metaphysics. It has already started communicating in the language of Mataphysics.

इस पदार्थ-विज्ञान को आज यह कहना पड़ता है कि पदार्थ(matter) के परे ऊर्जा है या घनीभूत ऊर्जा (solidified energy) ही पदार्थ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊर्जाप्रवाहों (energy-streams or flows) के जो असंख्य प्रकार (innumerable varieties) हैं, इनके भी परे एक सत्ता है। पदार्थ-विश्लेषण करते हुए अन्त में उन्हें ऊर्जा मिली, ऊर्जा के भी भीतर देखने गये तो उन्हें शून्य का साक्षात्कार हुआ। शून्य को भी भेदते हुए वैज्ञानिक आगे बढ़े तो "एकमात्र सत्ता" दिखी। उसे वैज्ञानिकों ने नाम दिये हैं "The Isness of life. The existencial essence. The ground of Existence" योरोप, अमेरिका, दक्षिण अमेरिका आदि में विज्ञान की चारों प्रमुख विधाओं के विशेषज्ञ इस दिशा में शोध में जुटे हुए हैं। वह 'सत्ता' सर्वव्यापिनी है, जीवन का 'होनेपना' 'है—पन' है—उसे देखकर वैज्ञानिक स्तिमित हैं।

इस सत्ता की सर्वव्यापिता का बोध बहुत-बहुत पहले से ही वैदिक-दर्शन ने दिया है यह हम इतिहास के आधार पर मानते हैं। परन्तु भारत का दुर्भाग्य है कि १९४७ के बाद यहाँ जो लोकमानस का निर्माण व विकास करना था उसमें वैदिक-दर्शन की सहायता व लाभ किसी भी प्रकार लिया नहीं गया। शिक्षणक्षेत्र द्वारा तो वह लाभ लिया ही जाना चाहिये था, जो नहीं हुआ। कम से कम अब भी चेता जाय; प्राथमिक विद्यालयों में ही ७-८ वर्षों के बालकों को ही वैदिक-दर्शन का सुगम-सरल रूप में परिचय देना आरम्भ किया जा सकता है। तभी वे वस्तुतः आधुनिक विज्ञान को भी भली-भाँति ग्रहण कर पायेंगे।

ईशावास्योपनिषद् में वेदिकदर्शन का सार कहा गया है। (यह यजुर्वेद का उपनिषद् है, शाखाभेद से इसमें १८ या २१ मन्त्र हैं। आर्य-सामाजिक मत से तो इसके मूल मन्त्र १६ ही हैं, अन्य को वे प्रक्षिप्त मानते हैं। जो भी हो, इस चर्चा का यह प्रसङ्ग नहीं।) पहला ही मन्त्र देखें—

"ईशावास्यमिदं सर्वम्, यत् किञ्च जगत्यां जगत्"

इस गतिशील जगत् में जो कुछ भी है वह सब ईश का आवास है यानी सर्वव्यापिनी सत्ता इस सब में है और सबको अपने में लिये हुए वह सत्ता विराजमान है। "गतिशील जगत्"—कहने में ही कहा गया कि यह ऊर्जामय है और ऊर्जाओं के आघात-प्रत्याघातों—ऊर्जाप्रवाहों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं से ही समस्त पदार्थ निष्पन्न हैं, ऊर्जा-गति से ही यह सम्पूर्ण जगत् या विश्व बना हुआ है—यह सूचित किया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस ऊर्जामय जगत् में व्याप्त क्या है ? किससे यह भरा हुआ और घिरा हुआ है ? यानी इसके भीतर-बाहर सब ओर वस्तु (Content) क्या है ? किस तत्त्व से यह सघन है ? कहा—"ईशावास्यम्"। 'ईश' शब्द तत्त्ववाचक है व्यक्तिवाचक नहीं। "ईशते राजते व्याप्नोति इति ईश्वरः" 'ईश्वर' शब्द उस तत्त्व के लिये है जो विश्व में 'जो कुछ भी है' उसमें भरा हुआ है और सब कुछ को प्रकाशित किये हुए है, सब कुछ द्वारा स्वयं प्रकाशमान है।

The Isness of life, the Unity of life, the homogeneity of life, the wholeness of life !

एक मन्त्र के इस चौथाई भाग या आधे भाग द्वारा ही क्या नहीं कह दिया गया ! बालकों को विश्व की ओर देखने के लिये यह दृष्टि मिले—यह भूमिका मिले, यह बैठक हो, यह नज़रिया बने—तो कैसा बनेगा उनका जीवन एवं कैसा बनेगा मानस ! मनुष्य-कृत सभी भेदों की मर्यादा उनकी समझ में आयेगी। मनुष्य-कृत भेद-रेखायें हों ही नहीं ऐसा समाज बनना मुश्किल है। हम देश के नाम देते हैं न ! 'यह भारत है' 'वह रूस-जापान-चीन-अफ्रीका-अमेरिका इत्यादि हैं', ये सब नाम मनुष्य के दिये हुए हैं। नानारत्ना वसुन्धरा पर इन अलग-अलग देशों की कोई वास्तविक सत्यता (reality) नहीं है।

Conceptual existence of national distinction इससे अधिक तो देशनामों का कोई महत्त्व नहीं, धर्मसम्बन्धी अनेक संगठित सम्प्रदाय बने; उनमें से किसी एक सम्प्रदाय में मेरा जन्म हुआ है इससे मैं कैथोलिक-प्रोटेस्टेन्ट-मेथडिस्ट-युनिटेरियन हूँ; या मैं मुसलमान (शिया-सुन्नी) या सूफ़ी हूँ; या फिर मैं हिन्दू हूँ, जैन हूँ, बौद्ध हूँ—इनके भी अवान्तर सम्प्रदायों में से किसी के अन्तर्गत हूँ। जिस भी सम्प्रदाय-जाति आदि में मेरा जन्म हुआ होगा उसके अनुसार मेरी जीवनशैली और साधना-पद्धति होगी। उन संस्कारों के अनुसार मेरी मनोभूमिका बनी होगी; परम सत्ता की ओर देखने या उसके साथ सम्बन्ध बाँधने के लिये किन्हीं संस्कारों की बैठक मुझे जन्म से ही मिली होगी। उसके अनुसार मेरी व्यवहार-पद्धति होगी, उपासना का स्वरूप होगा। किन्तु मैं केवल इन संस्कारों का पुंज या हाड़-मांस का पुतला नहीं। विभिन्न संस्कारराशियों के परे जो इन सबका अधिष्ठान है वह मानवता और उसमें भी तत्त्व-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूप जो सर्वव्यापी सत्ता है वही मेरा स्वरूप है, सत्ता है। क्योंकि जगत् में जो कुछ भी है वह 'ईश का आवास' या 'वासुदेव से वासित' है। मैं भी उस सर्वाकार-सर्वाधार-सर्वात्मिका सत्ता का एक उन्मेष हूँ। उसी तत्त्व की एक अभिव्यक्ति हूँ।

यह भान हो तभी स्वामी विवेकानन्द का धर्ममहासभा में किया गया सम्बोधन—"हे अमृतसन्तान !" (Yee the children of Immortality) समझ में आयेगा। वह काव्य नहीं। 'ईश' अमृत तत्त्व है, (जिस का मरण नहीं, कभी नाश नहीं; वह अमृत) उस अमृत तत्त्व से व्याप्त होने के नाते, मनुष्य देह में जन्म होने पर तुम्हारा क्या कर्तव्य और दायित्व है—यह आगे के मन्त्र में कहा गया है—

कुर्वन् एव इह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

मानव का धर्म कहा गया कि कर्म करते-करते जीना है। सौ-सवा सौ वर्ष तक जीवन जीने में तुम्हें रस रहे, जीने की क्षमता बनी रहे ऐसी वृत्ति धारण करनी है। जिजीविषा का अर्थ केवल हाड़-मांस के ढाँचे को वनस्पति की तरह जिलाए रखना (prolongation of biological structure & vegitable life) नहीं है। केवल धरती पर बना रहना नहीं। जिजीविषा यानी जीवन जीने की इच्छा। जीवन-कर्म करते-करते रसपूर्वक जीते रहना है आयुष्य भर।

वह कर्म मनुष्य को लिप्त नहीं करता, मनुष्य की चेतना पर कर्म लेप (आवरण, ढकने व रंगने वाला, चिपक जाने वाला) नहीं बनता। कर्म स्वयं बन्धन नहीं बनते। उन्हें बन्धनरूप बनाना या मुक्तिदायक बनाना यह तुम्हारे पुरुषार्थ पर निर्भर है। यदि तुम इन्द्रियों के आवेग से या बुद्धि में भरे विचारों के आवेश के कारण कुछ करोगे तो वह परवश क्रिया होगी; वह स्वायत्त कर्म नहीं होगा। इन्द्रियों में पड़े विकार और बुद्धि में अङ्कित संस्कारों को भलीभाँति देख-परख कर उनकी मर्यादायें समझ कर तदनुसार निर्णय कर के जब तुम अपना जीवन जीने लगोगे, सामने आयी परिस्थितियों को यथोचित प्रतिसाद होगे, समस्यायें-कठिनाइयाँ-चुनौतियाँ आयें तो उनका भलीभाँति यथाशक्ति सामना करोगे। आनन्द मिले तो आनन्द मनाओगे। जो भी करो वह तुम्हारा स्वायत्त कर्म हो। परायत्त जीवन भारतीय संस्कृति को इष्ट नहीं, अभिमत नहीं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इच्छनीय नहीं। उसे अपेक्षित है, प्रतिक्षण स्वायत्त जीवन। स्वायत्त-कर्मपरायण जीवन की आराधिका-उपासिका है भारतीय संस्कृति। यहाँ पलायनवाद को कोई स्थान नहीं।

'कुर्वन् एव इह कर्माणि' 'इह' इहलोक में—पञ्चमहाभूतों से बने इस शरीर में और इस शरीर को बनाने व धारण करने वाली समस्त पाञ्चभौतिक सृष्टि तथा परिवेश में, असंख्यों रूपों में विद्यमान इस जीवन में तुम्हें सतत कर्म करते हुए ही जीना चाहिये। यदि समझ-बूझ कर स्वयं स्वायत्त कर्म नहीं करोगे तो भी क्रिया-प्रतिक्रियाओं के नियत चक्र-से तुम छूट नहीं सकते। क्योंकि मानवजाति के आरम्भ से लेकर अब तक की गतियों के संस्कार तुम्हारे भीतर (मन-मस्तिष्क-हाड़-मांस-रक्तकणों में) भरे पड़े हैं। वे तुम पर हावी रहेंगे।

The momentum of the total human past in the biological & psychological structure will victimise you, unless you learn to act in totality, the wholeness of your being.

यदि स्वायत्त-सम्पूर्ण कर्म नहीं करोगे और प्रमाद-आलस्य या पलायन में पड़े रहोगे या परायत्त-परवश क्रिया-प्रतिक्रियाओं के गुलाम हो जाओगे तो तुम आत्महनन करोगे—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

वे लोग आत्महनन करते हैं तो जिम्मेवारी-पूर्वक समझ-बूझ कर स्वायत्त कर्म नहीं करते। लेप कर्म का नहीं चढ़ता, लेप या बन्धन तो वृत्तियों का होता है जो क्रिया के पीछे रहती हैं। इसीलिये फिर पातञ्जल योग-दर्शन में 'चित्तवृत्तियों का निरोध' कहा गया; कर्म का निरोध नहीं कहा। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों से ही आगे बढ़कर वृत्ति का ही निरोध करना योग है—ऐसा जो पतञ्जलिमुनि ने कहा उसका आधार यह ईशावास्य उपनिषद् में है।

षड्दर्शनों में से किसी को भी लें (वैशेषिक (कणाद)-न्याय (गौतम) सांख्य (कपिल) योग (पतञ्जलि) पूर्वमीमांसा (जैमिनि) वेदान्त (बादरायण व्यास)-सभी का सार अधिष्ठान इस छोटे से अद्भुत ईशावास्योपनिषद् में मिलेगा।

The source of the teachings of all systems of Indian Philosophy, is contained in this beautifully elegent small Upanisad of eighteen Mantras,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

वह गतिशील है, गतिमान् है, और साथ ही गतिमुक्त भी है । अर्थात् जीवन में गति है तो गतिमुक्त स्थिति भी जीवन का एक आयाम है। The motionlessness in the dimension of silencc is a dimension of life itself. (मौन-आयाम की गतिमुक्तता भी जीवन का आयाम है।) गति भी जीवन है और गतिमुक्त स्थिति भी जीवन है। सम्बन्धों में जीवन है, तो सम्बन्धमुक्त एकान्त भी जीवन ही है, सम्बन्ध और एकान्त दोनों जीवन के आयाम हैं। शब्द जीवन का आयाम है तो मौन भी जीवन का आयाम है।

अपने पूर्वज बड़े रसिक थे, सूक्ष्म सङ्केतों में बहुत कुछ कह जाते हैं वे—"तद् दूरे, तद् उ अन्तिके । तद् अन्तर् अस्य सर्वस्य तद् उ बाह्यतः" वह दूर है, वह पास भी है; और इस सब कुछ के भीतर भरा हुआ वह ही है। अन्तर्—यानी आशय,—The content, घटक । 'सर्व' नाम से जो भी है—समस्त सम्पूर्ण सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का आशय वही है।

The content of the cosmos, the content of the whole universe is that.

वह जो सत्ता है, जो ईश तत्त्व है, वही सब-कुछ का गर्भ (फल का गूदा) माल, अन्तरङ्ग सत्त्व, आशय, घटक है।

That Supreme Intelligence, that Cosmic consciousness, that Supramental Universal Consciousness is the existencial essence of every thing or being.

इसीलिये सब कुछ के दूर, पास, भीतर, बाहर सब ओर वह एकमात्र सत्ता ही विद्यमान है, विराजमान है। ये—'सब–दूर–पास–भीतर–बाहर' आदि शब्द तो शरीर-सीमा की अपेक्षा से हैं, वास्तव में तो जीवन में इन शब्दों के अर्थ का कोई अवकाश नहीं; न भीतर है न बाहर, न दूर न पास।

जिसने यह सत्य पहचान लिया, कि सर्वत्र सर्वदा सर्वथा मैं स्वयं ही हूँ, ऐसी जीवन की एकता जिसने पहचान ली उसे फिर मोह शोक क्या होगा ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥

यह सत्य-तथ्य यहाँ कहा न होता तो फिर गीता में (द्वितीय अध्याय में)—

"स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव !
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ??"

इस प्रश्न का उत्तर देने को आधार वासुदेव को कहाँ मिलता ? यह उपनिषद् ही वहाँ आधार-स्थान है ।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥

कैसी भयङ्कर बात कही है यहाँ ? केवल अविद्या की उपासना करने वाले अन्धतमस् में पड़ जाते हैं । बड़े अवधानपूर्वक इस साङ्केतिक भाषा के शब्दों को समझना होगा । यहाँ अविद्या किसे कहा गया ! पदार्थ-विज्ञान को वैदिक दृष्टि में अविद्या कहा है । "जिससे स्वयं को जाना जाय वही ज्ञान है, बाकी सब अज्ञान" अध्यात्मविद्या को ही विद्या कहा गया है, बाकी सब अविद्या है । वैदिक शब्दों का आशय केवल पुस्तकीय ज्ञान या विद्यालयों में "रामः रामौ रामाः" (व्याकरण) रटने से ही उपलब्ध नहीं होता, उसके लिये गहराई में उतरना पड़ता है ।

कहा कि केवल भौतिक ज्ञान-विज्ञान-शिल्प-कलायें-साहित्यादि भी अन्धकार में ले जाते हैं । क्यों ? यहाँ अन्धकार का अर्थ है अहङ्कार ।

"मैं' कुछ हूँ"—"मैं ज्ञानी, मैं विद्वान्, मैं करने वाला, मैं भोगने वाला"—ऐसा कहते-कहते 'मैं' के होने का अध्यास खड़ा कर लिया गया । आत्मा का सङ्कोच ही अहङ्कार का जन्म है । पानी ही जमने पर बर्फ बनता है, पानी अलग और बर्फ अलग—ऐसा नहीं है । बर्फ पिघलने पर पानी बनता है, पानी की तरलता, प्रवाहिता तब प्रकट होती है; वैसे ही अहङ्कार पिघलने पर यानी आत्मा का प्रसार होने पर आर्जव प्रकट होता है ।

अविद्या के कारण अहंभाव का अन्धकार चेतना पर एक आवरण बन बैठता है । उससे भी बढ़ कर और घने अन्धकार में ले जाती है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्या यानी आत्मविद्या, अध्यात्मविद्या। यदि आप आत्मा को ज्ञान का विषय बना लेंगे, उसे 'ज्ञेय' बनायेंगे, आत्मा का ज्ञान धारण करने वाले 'ज्ञानी' बनेंगे, तो उस ज्ञान के अहङ्कार का अन्धकार अविद्या वाले अहङ्कार की अपेक्षा और अधिक गूढ़-निबिड़-घनघोर है, इसलिये—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

इहलोक में—असंख्य नाम-रूप-पदार्थों वाली सृष्टि में रहना है। यह मृत्युलोक है, यहाँ क्षणप्रतिक्षण क्षरण ही होता रहता है—शीर्यंते इति शरीरम्। प्रतिक्षण परिवर्तनशील है यहाँ का सब कुछ। इस मृत्युलोक में जब तक आयुष्य है तब तक भलीभाँति सुयोग्य रीति से जीवन जीना हो तो पदार्थों का ज्ञान, शिल्प-कला-भाषा आदि का ज्ञान (जिन्हें अविद्या शब्द से कहा गया) आवश्यक है ही। जन्म के बिन्दु से मृत्यु के बिन्दु तक का जीवनधारण कुशल रीति से करने के लिये अविद्या-नामक पदार्थ-ज्ञान, नानारूपा सृष्टि का रससहित ज्ञान अनिवार्य है। यही है अविद्या द्वारा मृत्यु को तैरना। तैर कर यानी पानी में रहते हुए पानी के ऊपर-ऊपर स्वयं को बनाये रखते हुए, पार जाना है। जब कभी इस देश में सचमुच 'जनता की सरकार' बनेगी, जिसे इस देश के सत्त्व की—भारतीय संस्कृति की परवाह होगी—जो उस संस्कृति के आधार पर शिक्षणपद्धति का निर्माण करेगी—तब उसे इस उपनिषद् का आधार लेना पड़ेगा। मनुष्य-जीवन का अधिष्ठान क्या हो? मानवता का आधार क्या है? मानव किस स्तर तक ऊँचा उठ सकता है? मानवीय चेतना कितनी परिष्कृत-परिमार्जित हो सकती है? यह देखना हो तो ये मन्त्र 'देखने' व लिखने वालों की चेतना को आप देखें!

इस उपनिषद् का अनुवाद भारत की सभी भाषाओं और बोलियों तक में होना चाहिये, ताकि जो संस्कृत न पढ़ सकें उन जन-सामान्य तक यह भारत का तत्त्व एवं मानवता का अधिष्ठान-रूप चिन्तन पहुँच सके। कोई धर्म-सम्प्रदाय इस चिन्तन के आड़े नहीं आता—जैन-बौद्ध-सिख-पारसी-मुस्लिम या ईसाई किसी भी धर्म-सम्प्रदाय या उनकी अवान्तर शाखा में जन्म व पालन हुआ हो मनुष्य का—जिसे इस देश में रहना हो—भारत का नागरिक होना हो—उसके लिये इस उपनिषद् का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ-शिक्षण अनिवार्य (Compulsary education) जैसा होना चाहिए। इसके बिना इस देश में मनुष्य का निर्माण नहीं हो सकेगा।

इस उपनिषद् का एवं संस्कृति का महत्त्व पाश्चात्यों के ध्यान में आया है। पातञ्जलयौग (में से खास हठयोग) का भलीभाँति अभ्यास-अध्ययन किये हुए पाँच हजार योगशिक्षक योरोप (के Federation of Yoga) में हैं। उनमें से चुनिन्दा पाँच सौ योगशिक्षक १९८७–८८ के मेरे शिबिर में (इटली) आये थे। ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र पर प्रवचन सुनना चाहते थे। पातञ्जल योग का अध्ययन पूरा कर चुके हैं, इस समय 'स्मार्त योग' का, याज्ञवल्क्य स्मृति एवं याज्ञवल्क्यसंहिता का अध्ययन कर रहे हैं—सुन्दर उच्चारण करते हुए गायत्री मन्त्र, हवन मन्त्र बोलते हैं, गीतापाठ करते हैं। अर्जेन्टीना और चिली आदि दक्षिण-अमेरिकी देशों में भी इस धारा का प्रवाह बह रहा है। पूर्वी योरोप के देशों में यह अध्ययन चल रहा है कि योगशास्त्र का लाभ शिक्षण-पद्धति में कैसे कहाँ कितना लिया जा सकता है? वैदिकदर्शन का अध्ययन जर्मनी, नीदरलेन्ड्स्, फ्रांस और अमेरिका के कुछ भागों में उसी उद्देश्य से चल रहा है। भारत में वह क्यों न हो?

सन्त विनोबा भूदान-यज्ञ के समय जो १३ वर्ष ७ महीने देश भर में पदयात्रा करते चले, तब प्रतिदिन सुबह तीन बजे उनके साथ हम जैसे जो भी युवा लोग हों उन सब से ईशावास्य का पाठ करवाते थे। विनोबाजी कहते कि यह राष्ट्रीय प्रार्थना है। इसी प्रकार गांधीजी ने सायंकालीन राष्ट्रीय प्रार्थना चलाई थी, वे हैं श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय में से स्थितप्रज्ञ-लक्षण। जिस प्रकार ईशावास्य में मानवीय धर्म का आधार है, उसी प्रकार स्थितप्रज्ञ-लक्षणों में—नागरिक चेतना का आशय व्यक्त है, समाज का घटक होते हुए समाज में रहना हो तो व्यक्ति में सामाजिक चेतना कैसी होनी चाहिये—इसके सङ्केत हैं। सामान्य अहङ्केन्द्रित चेतना के परे जाकर जीवन जीना सिखाया गया है यहाँ। "स्थितप्रज्ञस्य का भाषा?" यहाँ 'भाषा' का अर्थ शब्द-मात्र या वाणी नहीं। किसी को ग़लतफ़हमी न हो इसके लिये पुनः कहते हैं—

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्?

स्थितप्रज्ञ यानी समाधि में स्थित प्रज्ञा वाला व्यक्ति कैसे बोलता है?—कैसे चलता-उठता-बैठता है? क्या करता है? समाधि नाम का जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आयाम है वह जीवन के सब व्यवहारों में व्यवहृत होने के लिये है। समाधि सिद्ध होने का अर्थ जीवन के दायित्वों से छूट जाने या अलग हट जाने का परवाना नहीं। ऐसा पलायन, जीवनविमुखता, या अलगाव इस संस्कृति को अभिप्रेत नहीं। बल्कि इस संस्कृति का कहना यह है कि अहंकेन्द्रित चेतना से पृथक् भी एक आयाम है जीवन का! वह है समाधि-स्थिति।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

स्थितप्रज्ञ शब्द से प्रारम्भ किया गया और अन्तिम श्लोक में 'ब्राह्मी-स्थिति' कही गयी।

दिन का प्रारम्भ ईशावास्य से करें और पूर्ति-पूर्णाहुति स्थितप्रज्ञ-लक्षणों के स्मरण से करें। इसमें कहा गया कि मनुष्य मनोगत सभी इच्छा-वासनाओं को छोड़ दे—

'मनोगत सभी काम तज दे जब पार्थ जो'।
'ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते'॥

हम विषयों का ध्यान करते हैं इसलिये उनका सङ्ग होता है, व्यक्ति या वस्तुओं से प्रत्यक्ष घिरे होने से 'सङ्ग' नहीं होता, सङ्ग तो मन में होता है मन के द्वारा होता है। सूक्ष्म विशद मनोविज्ञान का वर्णन है, और संकेत तथा सूचन है कि अहंकेन्द्रित मनोदशा से मुक्त-पृथक् होकर चेतना के एक अन्य आयाम में जीना भी सम्भव है। उसे 'प्रसाद'-अवस्था कहा है—

"प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते"

कितनी बड़ी घोषणा है कि मनुष्य के लिये सम्भाव्य जितने दुःख हैं उनका अन्त हो जाता हैं उस प्रसाद की दशा में। इसीलिये मैं कहती हूँ—(Relegiosity is the end of Suffering.)

दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति धर्म का सत्त्व है। यह नहीं कि एक-एक दुःख मिटता जाय और दूसरे नये-नये दुःख पैदा होते जाँय। चेतना के उस आयाम में प्रज्ञा 'स्थित' होने पर सभी दुःखों का सदा के लिये अन्त होता है। "उदासीनो गतव्यथः" उसके चित्त में से व्यथा 'निकल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गई' है, अब व्यथा होने की शक्यता ही नहीं है, क्योंकि वहाँ चेतना में अहङ्कार रहा नहीं।

इन स्थितप्रज्ञ-लक्षणों में मुझे नागरिकत्व का रहस्य मिलता है। समन्वयात्मक सामाजिक सम्बन्धों का रहस्य मुझे वहाँ दिखाई देता है। इस देश में अभी नागरिक का जन्म होना बाकी है।

Individualistic Consciousness is the greatest anti-social element in our life.

(व्यक्तिनिष्ठ मानस हमारे जीवन का सबसे बड़ा असामाजिक तत्त्व है) उस असामाजिकता से हम मुक्त हो सकते हैं यदि स्थितप्रज्ञ-लक्षणों को समझें, उनका मनन करें, एवं स्मरण करते रहें। परिवार के साथ, विद्यार्थियों के साथ, मित्रों-सहकर्मियों के साथ अपनी-अपनी भाषा में ईशावास्योपनिषद् तथा स्थितप्रज्ञलक्षणों के अर्थ खोल-खोल कर देखें, समझें-समझायें, इन शब्दों से आकाश निनादित होने लगे, तो 'समाज' और 'नागरिकता' का सहज उदय सम्भव होगा।

इन दोनों (ईशोपनिषद् तथा स्थितप्रज्ञ लक्षण) को मैं हिन्दू धर्म की प्रार्थना नहीं मानती; मेरे देखे ये राष्ट्रीय प्रार्थनायें हैं। हिन्दू समाज ने उनका आंशिक स्वीकार किया—उस वाणी की पूजा, उसके प्रति समादरभाव रखने में। पर उसके अर्थ का स्वीकार सभी मानवों द्वारा होना चाहिये, समाज के अभ्युदय के लिये सभी के द्वारा वह अर्थ-स्वीकार करवाया जाना चाहिये। क्योंकि भारतीय संस्कृति में मानव-धर्म, मानवीय संस्कृति और मानवीय मूल्य निहित है, एवं भलीभाँति विवेचित, व्याख्यात, विशद हुए हैं।

[महाबलेश्वर—फरवरी १९८९, ध्यानशिविर में एक प्रश्नोत्तरी में से सङ्कलित, मूल मराठी में से अनूदित]

"....विचारों-सिद्धान्तों का नशा पिला कर समाज-रचना व अर्थव्यवस्था बदलने के बहुत प्रयास हुए, लेकिन समस्या सुलझती नहीं। असन्तुलित, विकृत, भ्रान्तिपूर्ण चित्त लेकर कौन-सी समस्या हल होगी ?....आज के आंधी-तूफ़ान में कोई मुट्ठी भर भी व्यक्ति ऐसे हों जो पैर जमाए रहें, मूल्यों से उखड़ें नहीं, जीवन से भागें नहीं—तब तो समस्याओं के निराकरण की बात चले!"

—विमल-वाणी

('सख्य-संवाद'-में से)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कार्यकर्त्ता' मिटो ! जीवनसाधक बनो !

—विमला

['लोकनिकेतन'—गांधीविचारनिष्ठ शिक्षणसंस्था रतनपुर (गुजरात) में एक शिविर के अन्तर्गत प्रवचन १९।११।८८]

जिस परिस्थिति में हम जी रहे हैं उसके विषय में चिन्तन आवश्यक है। परिस्थिति के सन्दर्भ को छोड़कर किया गया चिन्तन बुद्धि का विलास, कल्पना का शृंगार, हो जाता है। वस्तुनिष्ठ चिन्तन परिस्थिति के सन्दर्भ में ही होना चाहिए। आज के युवक बड़ी गम्भीरता से सोचें—ऐसी गम्भीर परिस्थिति हैं। आजादी के बाद चालीस वर्ष बाद भी—

(१) भारत एक आध्यात्मिक देश है, उसकी अपनी एक संस्कृति है—जिसको बनाने में सनातनधर्मी (हिन्दू), बौद्ध, जैन, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी ने मिल कर परिश्रम किया, योगदान दिया,—इस भारतीय संस्कृति की कोई अपनी जीवनपद्धति है, विश्व भर की मनुष्यजाति के लिए हितकर कुछ जीवनमूल्य भारतीय संस्कृति ने दिये हैं—इस बात को हमने भुला दिया।

यह एक बहुत बड़ा राष्ट्रीय दुष्कर्म या पाप हुआ है कि—एक राष्ट्र के नाते हम कौन हैं? पूरे राष्ट्र की जनता एवं नागरिक होने के नाते हमारे जीवन के क्या मूल्य (values) हैं?—इसी को हम भूल गये।

भूलना हमने शुरू कर दिया था १९४५-४६ में ही। तभी तो गान्धीजी के साथियों ने उन्हें कह दिया था कि देश की आज़ादी के लिए आप हमारे नेता रहे; पर अब राष्ट्रनिर्माण में आप नेता नहीं रह सकते। और सभी जानते हैं कि सत्ता पर आये राजनेताओं ने ब्रिटेन-अमेरिका-रूस आदि की उँगली पकड़ कर वही अर्थनीति, शिक्षणनीति, उद्योगनीति यहाँ चलायीं। निकटतम साथियों ने ही गान्धीजी को कह दिया कि "राष्ट्रनिर्माण करना आप का काम नहीं है।"

गान्धीजी थे अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति और १९४६ के भारत के बीच की कड़ी (He was the link.) उन्हें हमने छोड़ दिया।

(२) जब हमने राष्ट्रनिर्माण के लिए संयोजन शुरू किया, योजना-आयोग (Planning commission) बनाया, विकास-योजनायें शुरू कीं, तब गान्धी-जीवनदर्शन को सर्वथा भुला दिया।

इन चालीस वर्षों में भारत की केन्द्रीय सरकार, प्रादेशिक सरकारें, संसद तथा विधानसभायें और विभिन्न योजना-आयोगों तथा उनके अमलदारों ने मिल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर कोई "पुरुषार्थ" किया है तो यही कि (भारतीय संस्कृति, सांस्कृतिक मानवीय जीवनमूल्य और उनको नये भारत से जोड़ने वाले गान्धीजीवनदर्शन को उड़ा कर) भारतीयताविरोधी (अभारतीय) संस्कृति और गान्धीजीवनदर्शन के विपरीत ही रास्ता अपनाया। इस सन्दर्भ को समझ लेना चाहिये। सबने मिल कर जो दुष्कर्म किये हैं—उनके परिणाम आज हमारे सामने हैं।

अब इसके विषय में सोचने के लिए हम सब यहाँ बैठे हैं। मुझे जब शिक्षण संस्थाओं में बुलाया जाता है, तो मेरी इच्छा होती है कि हम सब मिल कर मूलभूत समस्या पर चिन्तन करें। केवल चौतरफ़ा भ्रष्टाचार और सरकार की ग़लतियों—राजनैतिक पक्षों की ग़ैरजिम्मेवारी की चर्चा करने—वही रोने-गाने में मुझे रस नहीं। ये तो बीमारी के बाह्य लक्षण (Symptoms) हैं। इन्हें छोड़ कर पहले बीमारी की जड़ पकड़नी चाहिये। उस जड़ को खोद कर निकाल दें तो लक्षण अपने आप मिट जायेंगे। यदि लक्षणों के ही छिटपुट बाहरी उपचार में शक्ति लगती रहें और जड़ों का चिन्तन भी न हो, प्रयत्न न हो उसके लिए, तो देश की बीमारियाँ ज्यों की त्यों बनी रहेंगी, वे—भ्रष्टाचार की हों, कुशासन-दुःशासन की हों, नैतिक मूल्यों के ह्रास की हों, राष्ट्रीय एकता के क्षय की हों, जातिवाद-सम्प्रदायवाद की हों, मुफ़्त की कमाई और चाहे जैसे, उपभोग परायणता की हों, उत्तान भोगवाद की हों, सबके मूल में है—"विपद्विस्मरणं विष्णोः" जैसे प्रभु का विस्मरण मूल विपदा (विपत्ति) कही गयी है, वैसे गांधी-जीवन-दर्शन का विस्मरण, भारतीय संस्कृति की उपेक्षा, उससे विपरीत दृष्टि-वृत्ति होना यही इस देश के लिए विपदा बना हुआ है।

इस विपदा में से भारत को उबार लेने के लिए जीवनसाधकों की एक सेना चाहिये जो अपने हाड़-मांस लगा कर देश को गान्धीविरोधी एवं भारतीय संस्कृति-विरोधी राजनीति-अर्थनीति-शिक्षणनीति में से बाहर निकाले। एक बहुत बड़े पुरुषार्थ की, शान्तिमय क्रान्तिनिष्ठ सांस्कृतिक-अभियान की (Cultural revolution-movement) की आवश्यकता है—ऐसे मंगलपर्व पर हम खड़े हैं।

आज जो, गान्धीजीवनदर्शन को—गान्धीदर्शन की अर्थनीति-तकनीक, राजनीति एवं शिक्षानीति को दफ़ना देने की कोशिशें चल रही हैं, उनका विरोध, प्रतिकार कर के इस नज़रिये को उलटदेने की ज़रूरत है।

इसके लिए पहले स्वयं समझ लें कि भारतीय संस्कृति का अधिष्ठान क्या है? या इस देश का सांस्कृतिक-अधिष्ठान क्या है? सोचना आरम्भ करना होगा वेदोपनिषदों से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज उन्हें जागतिक समर्थन (sanction) प्राप्त है, [विद्यार्थियों के परिचय के लिए इसके कुछ नमूने बता दूँ—१९८३ में पहली बार दक्षिण-अमेरिका (चिली देश में) जाना हुआ। उन लोगों से मेरा प्रत्यक्ष कोई परिचय नहीं था; उन्होंने अपने किन्हीं मित्रों की मार्फ़त मेरी पुस्तकें प्राप्त कर के पढ़ी थीं, उसी नाते बुलाया था। तो जब मैं अपने पड़ाव पर (शिविर स्थान पर) पहुँची तो देखा कि स्वागत में करीब २५ लोग सफ़ेद कुर्ता-पाजामा पहने एक कमरे में गोलाकार शान्त बैठे हुए हैं, बीच में एक बड़ा-सा ताँबे का हवनकुण्ड व्यवस्थित रखा था। हवन की सामग्री रखी थी, गाय का घी था, गोबर के कण्डे थे। मेरे पहुँचते ही एक बार उठ कर सब लोग वहीं बैठ गये, और हवन शुरू किया—विधिवत् स्वरसहित मन्त्र बोलने लगे—"···इदम् अग्नये स्वाहा! इदं न मम !!"—पूरे १० मिनिट तक हवन चला। वे अग्निहोत्र के उपासक थे—चिली देश में! कल्पना कर सकते हैं? पूरे सात दिन वहाँ रहना हुआ, अग्निहोत्र एवं विशुद्ध वैदिक संस्कृति के नमूने देखने को मिले।

अभी अगस्त १९८८ में मैं इटली गयी। वहाँ रोम से ८० कि० मी० दूर सुन्दर एकान्त स्थान में एक योग एवं आयुर्वेद का सम्मिलित अध्ययन-केन्द्र है, वहाँ गयी। उन लोगों ने पातञ्जलयोगसूत्र का अध्ययन किया है, गायत्री मन्त्र एवं ॐकार की उपासना करते हैं; अब याज्ञवल्क्य के योग का अध्ययन कर रहे हैं। 'याज्ञवल्क्ययोगस्मृति' नामक ग्रन्थ में से पाँच मन्त्र निकाल कर रखे थे कि इन्हें समझाइये! योरोप भर में पाँच हजार योगशिक्षक हैं।

स्विट्ज़रलैण्ड में इन योगशिक्षकों की परिषद् हुयी—उसमें मुझे बुलाया था कि "गीता में अध्यायों के अन्त में—"ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे" कहा है, तो ब्रह्मविद्या से योगशास्त्र का क्या सम्बन्ध है—बताइये।"

१९८६ में मुझे पोलेण्ड बुलाया था,—वॉरसॉ युनिवर्सिटी में। वहाँ उपनिषदों का अध्ययन इतने शौक से होता है कि सब विभागों (Faculties) से अधिक विद्यार्थी इस भारतीय विद्या (Indology) के विभाग में हैं। वहाँ मेरा स्वागत किया गया हिन्दी भाषा में, मानपत्र पढ़ा गया संस्कृत भाषा में!

ऐसे उदाहरण तो प्रत्येक देश के दे सकती हूँ।]

कहना यही है कि भारत भले भूल गया हो, पर भारतीय संस्कृति की जड़ें पूरे विश्व में फैली हैं।

ये वेदोपनिषद् एवं दर्शन किसी धर्मविशेष की सम्पत्ति नहीं हैं। धर्म-सम्प्रदाय तो बहुत बाद में बने हैं, वैदिक संस्कृति तो मनुष्य जाति की विरासत है। फिर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी क्योंकि भारतभूमि में वेदोपनिषद् वाणी में प्रकट हुए, ऋषि-मुनियों की जीवन-शाला में प्रयोगसिद्ध होकर उनका रसायन बना, उनका सार षड्दर्शनों एवं श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा, (पुराणों में श्रीमद्भागवत द्वारा) कहा गया। इसलिये ये भारतीय संस्कृति के अधिष्ठान हैं।

उस महामहिम संस्कृति का, उसके द्वारा स्थापित जीवनमूल्यों का ह्रास महाभारतकाल में प्रारम्भ हो गया। अब मेरा देखना है कि विज्ञान द्वारा पुनः उन मूल्यों व संस्कृति की प्रतिष्ठा होगी और फिर से भारत को विश्व का नेतृत्व करना होगा!

भारतीय संस्कृति ने कहा कि जीवन एक सत्ता है, जो अखण्ड है, अविभाज्य है, एकरस है। (Homogenious, indivisible, nonfragmentable wholeness) जब तक जीवन की इस समग्रता को नहीं समझेंगे, तब तक गांधीजी का सर्वसंवादी जीवनदर्शन जो—समग्र दृष्टिकोण वाला है—वह पकड़ में नहीं आयेगा। क्यों राजनीति और अर्थनीति में असत्य, शोषण और हिंसा ग़लत हैं? इसका जवाब भारतीय संस्कृति में है; और कहीं आपको नहीं मिलेगा। बापू ने कहा 'सत्य' मेरा परमात्मा है। उनके परमात्मा मन्दिरों-मस्जिदों-गुरुद्वारों देरासरों-गिरजाघरों में क़ैद नहीं थे। उनके परमात्मा थे—जीवन की सत्ता—चैतन्यशक्ति। जिसका सङ्केत है समस्त निसर्ग एवं प्राणी-सृष्टि में एक अद्‌भुत मधुर संवाद। सब परस्पर विरोधी गुण-धर्म वाले पाँच तत्त्व (महाभूत—आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी) एक साथ रहते हैं, उनके परस्पर संवादी एवं पूरक सम्मिश्रण से सारा सचराचर जगत् (स्थूल भाषा में जड़ व चेतन सारी सृष्टि) बना है और इसमें असंख्यों प्रकार से जीवनसरिता बह रही है। पूरे जगत् में एक संवाद है एवं एक अनुशासन (ऋत) है। (There is a harmony and order in cosmos.) यह गहरे व मूल पर्यावरण (deep Ecology) की बातें हैं। जीवन की मूलभूत एकता—अखण्डता एवं पञ्चमहाभूतों का परस्पर संवाद एवं सहयोग जब तक समझ में नहीं आयेगा तब तक आज की पर्यावरण-शुद्धि एवं प्रदूषण हटाने की बातें केवल बौद्धिक एवं छिछले स्तर की रहेंगी। जड़ों को पकड़ो तो ही पत्तों—टहनियों की बीमारी का इलाज हो सकेगा।

भारतीय संस्कृति ने दूसरी मुद्दे की बात कही कि जीवन एकरस अखण्ड होते हुए भी बाकी सारी सृष्टि से मनुष्यजाति का महत्त्व इसलिये अधिक है कि उसमें स्वसंवेदनशीलता (self-awareness and sensitivity) है। उसमें मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार का चतुष्टय है जो पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों को चलाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, उन्हें द्वार या माध्यम बनाकर यह (मनुष्य रूपी) अत्यन्त संवेदनशील चेतना सारे जगत् के साथ सम्बन्ध जोड़ती है। इस संवेदनशील चेतना में संस्कार सींचते-सींचते इसे हमने प्राकृत से संस्कृत (संस्कारित) बनाया है। यही शिक्षण का अर्थ है, शुभसंस्कारों का सिञ्चन ही शिक्षण है। इससे अशुभ का निवारण होता है। अशुभ का केवल वाचिक-बौद्धिक निषेध करने से वह निवृत्त नहीं हो जाता; शुभ संस्कारों का सिञ्चन करने से ही अशुभ समाप्त होता है।

ऐसे संस्कारित मनुष्य हैं हम। कहा गया है कि इस सृष्टि में मनुष्य से बढ़कर (श्रेष्ठ) कुछ नहीं—"न मानुषात् परं किञ्चित् !" वैश्विक उत्क्रान्ति या विकास में मनुष्य एक विभूति है क्योंकि उसके पास मनन-चिन्तन करने वाली शक्ति (मन-बुद्धि) है। "मननात् मनुष्यः" "पश्यतीति पशुः"—जो केवल देखता है, और दिखने भर से अपनी नैसर्गिक वृत्तियों के अनुसार (क्षुधा से या भय से) सामने के पदार्थ पर टूट पड़ता है, या "पाशात् पशुः" जो बँध जाता है वह पशु है। इसलिये हमारा पहला धर्म होता है—मनुष्य बनना। शरीर मनुष्य का होने पर भी आज ८० करोड़ जनसंख्या वाले भारत में मनुष्य का अभाव हो गया है—जो मननपूर्वक सोच-समझकर संस्कृति एवं जीवनमूल्यों के अनुरूप काम करे, और अपने किये हुए कर्म की जिम्मेवारी अपनी मानते हुए उसका परिणाम स्वीकार करने को तैयार रहे। ऐसे मनुष्य देखने को नहीं मिलते। "मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति" वाली हालत ९९.९% की हो गयी है। पशु के सामने हरी घास हो तो उसकी नैसर्गिक वृत्ति है घास खाने लगना या जिधर घास हो उधर जाना। ऐसे आज के मनुष्य के सामने (उसकी भूख के स्तर के अनुसार) हजार—पाँच हजार लाख—दस लाख रुपये का प्रलोभन रखा जाय तो वह उसके पीछे चल देगा; भले ही उसके लिये कैसा भी ग़लत काम करना पड़े, किसी की हत्या ही क्यों न करनी पड़े !

यह विकास के पीछे लौटने (Regression in evolution) की परिस्थिति है, विकास थम गया है, और मनुष्य पीछे लौट गया है—प्राकृतता की ओर। अध्यात्म की बात तो दूर की है, पहले तो मनुष्य बनना होगा। मनन करना, अपने कर्म का अनुबन्ध संस्कृति और जीवन-दर्शन के साथ जोड़ना, अपने कार्यों की जिम्मेवारी लेना, सोच-समझकर कदम उठाना—यह मनुष्यता है। अतः पहले तो यही निश्चय करें कि हम भावना के आवेग में, बुद्धि के आवेश में बिना सोचे-विचारे कुछ नहीं करेंगे, अन्धे होकर कुछ नहीं करेंगे। जहाँ आप बुद्धि का भली-भाँति उपयोग करते हैं, मनन-चिन्तन-अध्यवसाय-पूर्वक कोई काम करते हैं, वहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक प्रकार का सन्तुलन आ जाता है। आवेग-आवेश से उन्माद और असन्तुलन आता है, वहीं अशुद्धि पैदा होती है। असन्तुलित व्यक्ति कोई भी कार्य सही ढंग से नहीं कर सकता। (संसद और विधानसभाओं में जिस तरह की घटनायें—छिछले स्तर की अशोभन भाषा, गाली-गलौच, मारपीट तक होने लगी है वह इस उन्माद-असन्तुलन-अशुद्धि का स्पष्ट उदाहरण है।)

आज भारत में सबसे बड़ी बीमारी यह है कि जीवन के सभी स्तरों में और विशेष रूप से सार्वजनिक जीवन में किन्हीं सत्ता-स्थानों-अधिकारों पर बैठे लोगों के दिल-दिमाग उन्मादग्रस्त एवं असन्तुलित हैं। इसीलिये अशुद्धि और अशुभ सार्वजनिक जीवन में छाये हुए हैं। मैं चाहती हूँ कि अब पढ़-लिखकर खड़ी होने वाली—देश की बाग़डोर सम्हालने वाली हमारी नई पीढ़ी के जीवन में सन्तुलन का अधिष्ठान हो। सन्तुलन से शुद्धिकरण (Purification) हो जाता है। शुद्ध दर्शन (pure perception) होगा, शुद्ध मनन-चिन्तन होगा तो व्यवहार में शुद्धि और सन्तुलितता आयेगी। इन्द्रिय-मन-बुद्धि का सतत सन्तुलन ही कुशल कर्म में परिणत होता है, वही योग है। "योगः कर्मसु कौशलम्", और भारतीय संस्कृति ने मनुष्यजीवन का लक्ष्य एवं कृतार्थता मानी है योगी होने में। "तस्माद् योगी भवार्जुन!" (culmination of human evolution is the dimension of yoga.) समाधि यानी योगावस्था मानवीय चेतना के विकास का अन्तिम आयाम माना गया। अतः हमें योगावस्थित होकर कर्म करना है। और योग का अर्थ है "समत्वं योग उच्यते!" भीतर चित्त की समता, बाहर वाणी और व्यवहार (इन्द्रियों के कर्म) में सन्तुलन।

इस भारतीय संस्कृति के अनुसार 'कार्यकर्त्ता' बनने के लिये अवकाश नहीं, जीवनसाधक होने की ही बात है। साधना का अर्थ है व्यवहार में रहते हुए चित्त की समता और इन्द्रियों के सन्तुलन को साधना। जीवन ही यह साधना करने का क्षेत्र है। ऐसे ही चित्त का समत्व और व्यवहार में सन्तुलन साधे हुए जीना है।

इसमें कार्यकर्त्ता की भावना कहाँ से आयी? मुझे लगता है यह भावना एक तो लाये 'ब्राह्मसमाज' और 'प्रार्थनासमाज' (१०० साल पीछे की बात है) और दूसरे लाये स्वामी विवेकानन्द। मानवधर्म की स्थापना करने वाले सर्वधर्मसमवायी श्रीरामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे विवेकानन्द, और वे २८ वर्ष की आयु में (उगती जवानी ही कहें) गये अमेरिका, इंग्लेन्ड आदि अन्य देशों में भी घूमे। वहाँ वे ईसाई मिशनरियों की कार्यपद्धति से प्रभावित हुए। उन्हें लगा कि अपने यहाँ भी एक "मिशन" बनना चाहिये, सो उन्होंने "रामकृष्ण मिशन" बनाया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इससे पहले अपने यहाँ "कार्यकर्त्ता" यह शब्द नहीं था। क्योंकि यहाँ तो "कर्ताभाव" से मुक्त होने का लक्ष्य है—"मिटे कर्ता तो छूटे कर्म, अखा कहे यहि धर्म का मर्म" यहाँ तो कर्ताभाव-भोक्ताभाव से आगे द्रष्टाभाव से भी मुक्त होने की बात है—आत्मस्थ-स्वरूपस्थ होने में।

"ब्राह्मसमाज", "प्रार्थनासमाज" पर भी ईसाई संस्कृति का अधिक प्रभाव था। ये सब लॉर्ड मैकाले की शिक्षणपद्धति में एवं अभारतीय जीवन शैली में पले-पढ़े-पनपे हुए लोग थे। इसीलिये ईसाई कार्यपद्धति से प्रभावित होकर वैसी भाषा इनके काम में आ गयी। स्वामी विवेकानन्द से शुरू हुआ यह शब्द फिर गाँधीजी–विनोबाजी–जयप्रकाशजी एवं इसी धारा में चलता आया। किन्तु अब उसका आशय समझ कर भारतीय संस्कृति में आना उचित होगा। इसलिये मैं कहती हूँ—"कार्यकर्त्ता मिटो, जीवनसाधक बनो!"

गाँधीजी 'कार्यकर्त्ता' नहीं थे, नेता भी नहीं थे, वे थे निरे जीवनसाधक। उनसे लोग पूछते कि "आप यह भारत की स्वाधीनता के संग्राम का नेतृत्व क्यों कर रहे हैं?" तो वे कहते कि "यह मेरी सत्य-अहिंसा की साधना का एक भाग है। जीवन की एकता की साधना के पथ में यह संघर्ष आ गया इसलिये कर रहा हूँ। यदि सत्य-अहिंसा को छोड़ने से भारत की स्वाधीनता आती हो तो वह मुझे नहीं चाहिये!" —कौन कहेगा उन्हें 'नेता'! आज के नेता क्या करते हैं? —जैसे भी मिले—झूठ बोल कर, गुण्डों की मदद से, तस्करी के व्यापार से, मतदान-केन्द्रों पर मतपेटियों की हेराफेरी करके; जाली मतदान कराके, प्रतिपक्षी उम्मीदवारों का अपहरण या हत्या तक करके किसी भी तरह सत्ता और सम्पत्ति बटोरने में ही सफलता मानते हैं। साधनशुद्धि की बात कौन करता है? उधर गाँधी जी कहते थे कि "सत्य-अहिंसा को छोड़ कर आने वाला देश का स्वराज भी नहीं चाहिये। भारत का स्वराज्य दुनियाभर के शोषितों-दलितों के लिये एक आशा का सन्देश बनेगा। इसलिये यहाँ स्वाधीनता-आन्दोलन का कार्य सत्य-अहिंसा और साधनशुद्धि से ही होगा, वह पहली शर्त रहेगी!" —ऐसे साधनशुद्धि का विचार जीवनसाधक ही रख सकता है।

कार्यकर्त्ताओं की जमातों से समाज और देश परेशान है। दुनियाभर के कार्यकर्त्ता हैं, गाँधीजन—विनोबाजन—जे० पी० जन आदि, उनकी कितनी सारी संस्थायें हैं, लेकिन उन संस्थाओं में भी आज साधनशुद्धि और सत्य-अहिंसा का विचार नहीं रहा, वहाँ गङ्गोत्री में ही जहर मिल गया है।

इसलिये कहती हूँ कि यह 'कार्यकर्ता'-भाव छोड़ो! उसका अधिष्ठान ग़लत है। "मैं" दूसरों के लिये कुछ कर रहा हूँ" —यह भूमिका हो तो उसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छिपी हुई है अपेक्षा कि "इसका कुछ फल मुझे भी मिलना चाहिये !" सरकार स्वाधीनता-सैनिकों को पेन्शन, मकान और यातायात (रेल-प्रवास) की सुविधायें दे रही है। इसमें सरकार का तो निहित स्वार्थ है ही कि जिन्हें पेन्शन मिलती होगी वे सत्तारूढ पक्ष के विरोध में कुछ नहीं बोलेंगे। इसलिये सरकारें खैरात बाँटने की तरह ये सुविधायें बाँट रही हैं। एक बार डलहौज़ी में कुछ स्वातन्त्र्यसेनानी मेरे पास मिलने आये थे, बातचीत चल रही थी, उसी में यह रेलवे-पास की भी बात आयी। उन लोगों में एक व्यक्ति चालीस से भी कम उम्र का था। उसे भी "स्वा० से०" पास मिला हुआ था। मैंने पूछा—"भाई तुम्हारा जन्म किस सन् में हुआ था ?" पता चला १९५० में। तो "स्वातन्त्र्य सेनानी कैसे हो गये ?"—"किसी सम्बन्धी के कारण।" उससे पैसा और सुविधा मिलती है न ! फिर सत्य को कौन पूछे ?

देश की स्वतन्त्रता के लिये जेल जाना पड़ा था, तो क्या उस सेवाकर्म की भी कीमत वसूल करनी है ? मरने वाले के चित्त में यदि कर्ताभाव रहे तो भोक्ताभाव आता ही है, और तब कार्य 'सेवा' न रह कर सौदा बन जाता है। जीवनसाधक के कार्य सौदा नहीं बनते, वह तो "चित्तशुद्धयर्थं कर्माणि" करता रहता है। कोई पतिव्रता पत्नी यह नहीं कहती कि "मैंने चालीस-पचास साल अपने पति की एकनिष्ठ सेवा की है—मुझे इसका इनाम मिले !" कोई मातायें कभी कहती हैं ? कि "मैंने अपने इतने बच्चों को पाल-पोस कर, उनकी बीमारियों के समय रातें जाग कर, चालीस-पचास साल तक तीन-चार बार नाश्ता-भोजन बना-बना कर खिलाया है, इतना परिश्रम किया है—मुझे बोनस दो !" मातृत्व-पत्नीत्व सौदे की वस्तु नहीं है, 'सेवा' का कैसे सौदा होगा ?

"समाज के लिये मैंने इतना किया"—यह भाव ही चित्त में रहा तो वह सेवा नहीं हुई। कार्यकर्त्ताओं की तो क्या बात करें, आजकल तो शिक्षक भी "नवाबजादे" बन गये हैं, पढ़ाने के घण्टों की गिनती करते हैं, वेतन बढ़ाते जाने की माँग पर लम्बी-लम्बी हड़तालें चलती हैं, शिक्षण को भी "ट्रेड" बना कर "यूनियन" बनते हैं, उनका दबाव लाया जाता है। (साल में कुल कितने घण्टे वास्तव में पढ़ाते हैं—यह नहीं गिनते !) जैसे माँ के हृदय का वात्सल्य रक्त को दूध बना देता है, वैसे शिक्षक वह है जिसका ज्ञान वात्सल्य के कारण करुणा और बोध बनकर विद्यार्थियों में संक्रान्त हो। लेकिन आज शिक्षण भी पेशा बन गया। शिक्षक अर्थशास्त्र की भाषा में नफ़े-नुक्सान और लागत का हिसाब लगाते हैं बल्कि व्यापार से कहीं बढ़ कर शोषण करने में हिचकिचाते नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कार्यकर्त्ता' भी चाहते हैं जल्दी से जल्दी 'नेता' बनना। 'नेता' बने तो 'सत्ता' लेनी है। 'सत्ता' मिल गयी तो उसे चिपक कर बैठना है, उसी अर्से में अपने कुटुम्बियों (बेटे-जमाई-भतीजे) के लिये सत्ता 'कमा देनी' है। —ऐसी देश की हालत हो गयी है। इसलिये हमें यह कार्यकर्त्ता बनने की भाषा छोड़ देनी चाहिये। शब्दों के साथ सहचारी भाव आते हैं और सारा मानस-मनोदशा विकृत हो जाती है। इसलिये मैं बारम्बार कहती हूँ कि "कार्यकर्त्ता मिटो, साधक बनो!"

गान्धीजी साधक थे, बिनोबाजी साधक थे, श्री नानाभाई भट्ट साधक थे। गान्धीजी कहते थे—"मेरे चित्त की शुद्धि के लिये मैं सत्य की उपासना करता हूँ। अहिंसा की साधना मैं अपनी जीवनशुद्धि के लिये करता हूँ।" वे परिणाम-परायण नहीं थे। कार्य करने की प्रक्रिया में चित्तशुद्धि हुई हो तो वही सफलता मानते थे। यदि चित्त-वाणी-व्यवहार-जीवन में विकृतियाँ घुसी हों तो "मैं असफल रहा"—ऐसा वे मानते थे। सफलता-असफलता की कसौटी जीवन की गुणात्मकता पर है, बाह्य परिणामों पर नहीं। —यह है साधक की भाषा। और—"संस्था को अधिक से अधिक जमीन मिली, पैसा मिला, अधिक विद्यार्थी भरती हुए, संस्था के समारोहों में बड़े-बड़े मन्त्री व नेता आये—बड़े लोग आये"—इस तरह सफलता को नापते हैं कार्यकर्ता। इस तरह सफलता-असफलता की परिभाषायें—कसौटियाँ बदलेंगी, मूल्याङ्कन बदलेंगे।

अधिष्ठान भारतीय संस्कृति का, जीवन की अविभाज्यता, अखण्डता का हो; जहाँ कोई ऊँच नहीं नीच नहीं, कोई हिन्दू-मुसलमान-ईसाई नहीं; सिर्फ़ खालिस इन्सान की पहचान हो। स्वयं मानव बन कर मानवधर्म की मशाल हाथ में पकड़ने की योग्यता धारण करो—यह अध्यात्म का सन्देश है। जन्म एव वंश से तुम जो भी हो—हिन्दू-मुसलमान-बौद्ध-जैन-सिख-ईसाई—घर में एवं प्रभु को पुकारने के स्मरण करने के तरीकों में वह बने रहो, पर बाकी सारे व्यवहार एवं सम्बन्धों में खालिस-निपट-इन्सान रहो।

पोलेन्ड में मेरे भाषण सुन कर एक ईसाई सज्जन चिढ़ गये; बोले "आप धर्म को नहीं मानती हैं?" मैंने कहा—"मैं किसी भी संगठित धर्म-सम्प्रदाय को नहीं मानती।" वे बोले—"तो आप हिन्दू नहीं हैं?" मैंने कहा—"जन्म हिन्दू घर में हुआ। पर अब मैं मानव बन गयी हूँ।" वे बोले—"तो क्या हिन्दू मानव नहीं हैं?"—मैंने कहा—"ऐसा नहीं, किन्तु किसी धर्म-सम्प्रदाय-विशेष के दायरे में मानवता मर्यादित हो जाती है। मानवता सीमित न हुई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती तो धर्म के नाम पर पिछले पाँच हजार वर्षों में इतनी लड़ाइयाँ न हुई होतीं, इतना भीषण रक्तपात न हुआ होता।···" मैं ऐसी हिन्दू नहीं हूँ कि हिन्दू होने के कारण मुसलमान न रहूँ, बौद्ध या जैन न रहूँ। मैं इन्सान हूँ, इसलिये हिन्दू भी हूँ, सिख भी हूँ, जैन-बौद्ध या मुसलमान भी हूँ, ईसा-भक्त भी हूँ। नहीं तो केवल मानव हूँ।" धर्म और अध्यात्म यहाँ अलग पड़ जाते हैं। जितने संस्थागत संगठित धर्म हैं—उन्होंने, विभिन्न सिद्धान्तवादों ने, जातियों और सम्प्रदायों ने मनुष्य-मनुष्य के बीच खाईयाँ खोदी हैं, भेदों को बढ़ाया है, भेदरेखाओं को सख्त बनाया है, परस्पर संघर्ष और द्वेष बढ़ाये हैं।

इन सब भेदरेखाओं से अलग हटना है। इसके लिये इन्हें मिटाने का नया उपद्रव मत खड़ा करिये। इन्हें जहाँ हैं वहीं छोड़ कर, आप इन से ऊपर उठ जाइये, अलग हो जाइये और मनुष्य बनिये—यह मेरी पुकार है। बस चरित्र-निर्माण मनुष्यनिर्माण (Charactermaking & manmaking) ये दो ही काम करने हैं, फिर तो इस देश की मिट्टी-जल-वायु में पड़ी हुई जो प्रतिभा है, वह अपने आपको सम्हाल लेगी।

इसीलिये मैं कहती हूँ—"जीवनसाधक बनो!" हमारी नज़र कार्य के बाहरी परिणाम के आँकड़ों पर न रहें; कार्य करने में चित्त की दशा कैसी रहती है? वह कितना शुद्ध-समृद्ध बनता है? कितना ग्रन्थिमुक्त एवं खुला आकाश जैसा बनता है? कितना उपाधियुक्त होता है?—यही देखना है। परिणाम व सफलता की हमारी कसोटियाँ बदल जायें।

इस ढंग से जीने वाले के जीवन में परिणाम क्या आयेगा?—यदि मैंने अपने आपको और दूसरों को मनुष्य माना है, मनुष्य के नाते ही सबको देखा है,—"यह जाट है, यह राजपूत है, यह ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य है, यह हरिजन-आदिवासी है, यह गुजराती-मराठी-पंजाबी-मद्रासी-बंगाली-असमी है, यह हिन्दू-जैन-मुसलमान···है,"—ऐसे बाहर के उपाधि नहीं देखे तो सब के प्रति मेरा व्यवहार समान, मनुष्यताभरा होगा। पशु रहते हैं झुण्ड में, मनुष्य रहता है समाज में। फर्क यह हुआ कि एक-दूसरे के साथ रहने का हमारा संकल्प है।

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्"
"ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं-
करवावहै, तेजस्वि नावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै!"

साथ रहना है, साथ परिश्रम करना है, परिश्रम के फल में सहभागी सब को बनना है, शान्ति से एकसाथ जीना है। यह संकल्प हो तो समाज बनता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब, इस दृष्टिकोण से, जीवनसाधक बन कर हम जीने लगें तो पहला कर्तव्य क्या होगा ? हम एक दूसरे के साथ सख्यभावना से रहेंगे। हमारा जीवन सख्यमूलक बनेगा। ऊँच-नीच नहीं, एक दूसरे का शोषण करने वाली वृत्ति नहीं, बल्कि एक दूसरे के प्रति सहयोग-परायण सहजीवन। विज्ञान के युग में—अधिकारभावना से मुक्त सख्ययोग (Non–authoritarion friendship) अनिवार्य हैं। हमारे विनोबाजी कहते—अब सख्ययोग का जमाना आया है। यानी ऊँच-नीच नहीं, भेद रेखायें नहीं, सब मित्र हैं। बौद्ध धर्म में—मैत्री-मुदिता-करुणा-उपेक्षा ऐसी चार शक्तियों की उपासना कही गयी है। उसमें से मैत्रीभाव की उपासना करना विज्ञान युग का धर्म है। (It is now a historical & material necessity.) क्योंकि विज्ञान ने सारे भूतल के मनुष्यों को एक साथ बैठा दिया है। २४ घण्टे में (विमान में) पूरे भूमण्डल की दूरी तय की जा सकती है। देश और कालविस्तार आज विज्ञान व तकनीक के सामने सिकुड़ कर मुट्ठी में आ गया है। दुनिया इतनी छोटी हो गयी है कि मनुष्यजाति का एक वैश्विक परिवार (World-family) बनाये बिना शान्ति से रहना सम्भव नहीं। भारतीयों को भी, इतनी जातियों, इतनी भाषाओं, इतनी धर्म-संस्कृतियों के साथ सख्य-सहयोगमय जीवन की कला (जो प्राचीन काल में थी—वह) पुनरुज्जीवित करनी होगी, वह साधे बिना, विकसित किये बिना भारत के लोगों का जीना भी सम्भव नहीं, क्योंकि हमने लोकतन्त्र बनाया है। यहाँ कोई राजा नहीं, प्रजा नहीं, हम एक दूसरे के सखा (मित्र) बन कर जियेंगे। हिन्दू-सिख-मुसलमान-जैन-बौद्ध, दक्षिण-भारतीय उत्तर-भारतीय, असमी, नागालैण्ड के लोग और बीकानेर—द्वारिका-कच्छ के लोग, काश्मीर और कन्याकुमारी के लोग मित्र बन कर रहें।

मित्र एक दूसरे से झूठ नहीं बोलते। वे एक-दूसरे की चोरी नहीं करते। मित्रभाव आने का अर्थ है ऊँच-नीच का भाव (Hierarchy) न रहना, परस्पर द्वेष न रहना। अर्थात् सत्य-अहिंसा-अस्तेय-युक्त और शोषण-हिंसा-मुक्त सम्बन्ध बनाते हैं।

महर्षि मार्क्स–(एंग्लस् व लेनिन) ने शोषणमुक्त एवं शासनमुक्त समाज का सुन्दर स्वप्न देखा था। (Whithering away of the State & exploitation-free society)—ये दो उनके सूत्र थे। लेकिन उनको मैत्रीभाव का—सख्ययोग का दर्शन नहीं हुआ था, इसलिये वे अहिंसामय पद्धति से शासन का एवं शोषण का अन्त करना सिखा नहीं पाये। उन्होंने दलितों-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शोषितों द्वारा शासकों-शोषकों को एक अन्तिम हिंसा की अनुमति दे दी; क्योंकि उनके सामने वेदोपनिषदों का यह सख्य भरा संवाद का मन्त्र नहीं था।

वेदोपनिषदों का नाम लेता हूँ, क्योंकि मानवीय संस्कृति का स्रोत वहाँ मिलता है। उपनिषदों में, शिष्य के समावर्तन (अध्ययन पूरा होने पर घर लौटने) के समय गुरु उससे कहते हैं—

"यानि अस्माकम् अनवद्यानि सुचरितानि,
तानि त्वया सेवितव्यानि, नो इतराणि।"

हमारे चरित में जो दोष रहे हों, कमज़ोरियाँ दिखी हों, उनका सेवन तुम नहीं करना—यह था गुरु-शिष्य का सख्यभाव।

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥

इसमें भी गुरु-शिष्य का सख्य ही संकेतित है। सख्यभाव के बिना शोषण व शासन का अन्त, वर्ग-भेद, वर्ग-विद्वेष और हिंसा का अन्त नहीं हो सकता; यह विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है। सख्यमूलक सहयोगपरायण सहजीवन विज्ञान-युग में मानव का स्वधर्म है।

आज तो सारी मनुष्यजाति का मानस संघर्ष-परायण (Psychology of confrontation) बना हुआ है। भक्त एवं जोवनसाधक का मानस सहयोग (Co-operation) का होता है। गांधीजी ने असहयोग का आन्दोलन चलाया। उन्होंने कहा "यह प्रतिकारात्मक सहयोग है। मैं ब्रिटिशों का सहयोग कर रहा हूँ कि उनकी शैतानी सल्तनत वे यहाँ से उठा लें। वे जान लें कि अत्याचार करने से वे भारतीयों पर राज्य नहीं कर पायेंगे। उनकी शैतानी सल्तनत का, मैं विरोध करता हूँ।" वैरी ब्रिटिश व्यक्ति नहीं था, ब्रिटिशों का राज्य वैरी था। उस राज्य को हटाना था, अंग्रेजों से मित्रता रखनी थी। इस तरह जो जीवन-साधक है उसके लिये संघर्ष भी सहयोग का वाहक बनता है। हमारे विनोबाजी कहते आचार्य निर्वैर-निर्भय-निष्पक्ष हो। उसका शासन समाज के मन पर चले।

अतः सख्यमूलक सहयोगपरायण सहजीवन चाहिये। हमारे मतभेद होंगे, उन्हें व्यक्त करेंगे, जहाँ ज़रूरत होगी प्रतिकार भी करेंगे; लेकिन मानवता की भूमिका नहीं छोड़ेंगे। अन्याय का प्रतिकार भी सुसभ्य मानवोचित रीति से करेंगे। वह आज नहीं होता, भारत का जनजीवन बहुत असंस्कृत-असभ्य, भ्रष्ट, गन्दा और पाखण्डभरा हो गया है। इसमें से इसे निकालना है, इसलिये एक नया मानस पैदा करना होगा, जिसमें अधिकारवाद और घृणा की जगह सख्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो, संघर्ष की जगह सहयोग ही हो सकता है। सत्ता का उपयोग जनता की सेवा में करने के लिये ही जनता के प्रतिनिधि जाकर संसद-लोकसभा-विधान-सभाओं में, पंचायतों में, अन्य सभी राजनैतिक अधिकारों पर बैठेंगे, सत्ता का उपयोग अपने लिये नहीं करेंगे। यानी हाथ में सत्ता और संपत्ति होने पर संयम छूटे नहीं।—यह जीवनसाधक ही कर सकता है।

हम परिस्थिति के सन्दर्भ को भूल गये, अपनी विरासत और संस्कृति को भूल गये, उस विरासत व संस्कृति से इस युग के सन्दर्भ को जोड़ने वाली कड़ी—महात्मा गांधी के जीवनदर्शन को भूल गये। उसका दुष्परिणाम सामने है। अब भी (वापस लौट कर नहीं, आगे बढ़ कर—) गांधीपथ पर बढ़ा जा सकता है; उससे ही लोकतन्त्र का अधिष्ठान सख्य व सहयोग जीवन में आ सकेगा। लोकतन्त्र जीने के लिये 'कार्यकर्त्ता' की भूमिका मिटा कर, अपनी चित्तशुद्धि के ही उद्देश्य से जनसेवा को माध्यम बनाने वाले जीवनसाधकों की जमात की आज देश को आवश्यकता है। मेरा भरोसा भारत की मिट्टी में है, भारत की युवा पीढ़ी में है। (पिछले पांच वर्षों में कम से कम तीन हजार युवक-युवतियों (—शिक्षित वर्ग में से) से हमारे युवा-शिबिरों में सम्पर्क आया है। कठोर परिश्रमी एवं बहुत कम सुविधा वाला जीवन ये युवक बड़े आनन्द से हमारे साथ जी जाते हैं, और प्रेम से जनसेवा की बात समझते हैं, इससे भारत का भावी मुझे उज्ज्वल ही दिखाई देता है। कोई सही ढंग से देश-हित मानव-हित की बात युवा पीढ़ी के सामने रखे तो सही! युवा वर्ग उद्यत है शुभसंस्कार-सिञ्चन होने देने के लिये।

आज देश जिस सङ्कट में से गुजर रहा है उस विपदा को हटाने में कोई पुराने गान्धीजन एवं पुरानी परम्पराओं से जकड़े धार्मिक लोग काम नहीं आयेंगे, साधु-महात्मा काम नहीं आयेंगे, इस देश की मिट्टी में से सीधे पोषण लेकर खिलने वाले फूलों जैसे हमारे युवाधन को ही उठना पड़ेगा, और भारतीय संस्कृति-विरोधी, गांधी-विरोधी एवं मानव-विरोधी जो दर्शन राजनीति-अर्थनीति-विकास-योजनाओं तथा शिक्षणनीति में चल रहा है उसे उलट कर राष्ट्रजीवन को गांधी पथ पर ले चलना होगा। महात्मा गांधी मानव धर्म या मानवीय संस्कृति के प्रतीक हैं, मानवीय अर्थनीति तथा मानवीय राजनीति के उद्गाता हैं, इसलिये मैं उनका नाम लेती हूँ। ४० साल पहले सियासती आज़ादी आ गई, किन्तु सच्चा स्वराज अब तक नहीं आया है; उस अधूरे काम को पूरा करना बाकी है। वह युवक ही कर सकेंगे।

—❀—❀—❀—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्रमञ्जूषा में से

"......'बापू' की खादी, ग्रामोद्योग तथा अन्यान्य रचनात्मक प्रवृत्तियाँ एक तो स्वाधीनता-संग्राम के अविभाज्य अङ्ग थे, साथ ही स्वाधीन भारत के नव-निर्माण की नींव-स्वरूप थे।

स्वाधीनता के बाद राष्ट्रीय संयोजन में उनका स्थान एकदम गौण बना। उपभोगवादी मनोवृत्ति ने नेता, प्रजा सबको घेर लिया। पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृति के मूल्याङ्कन एवं मूल्य शासकवर्ग ने देश पर लादे। भारतीय संस्कृति की जीवनदृष्टि, जीवनशैली सर्वथा उपेक्षित बनती गई। जो खादी-ग्रामोद्योग सरकार के आश्रय पर जीने लगे, Export पर जीने लगे, मुनाफ़े-घाटे की भाषा में बोलने लगे, मालिक-नौकर की भाषा बरतने लगे, उनकी तेजस्विता तो घटनी ही थी!

महात्मा गान्धी, विनोबा, राजाजी इत्यादि विभूतियाँ परम भागवत भक्त थे। प्रभुश्रद्धा उनका जीवनधार थी। वे जीवनसाधक थे। खादी-ग्रामोद्योग तथा अन्य रचनात्मक प्रवृत्तियों को सम्हालने वाला कार्यकर्त्तावर्ग आस्तिकों की प्रभु-भक्तों या जीवनसाधकों की जमात तो बना नहीं, इसीलिये भीतर से आधारहीन बनते गये। फिर तेजस्विता तो घटनी ही थी।

इसलिये रचनात्मक कार्य एवं भारत में गान्धी-जीवनदर्शन के भविष्य की दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक लगता है कि—

(१) खादी-ग्रामोद्योग के कार्यों में सरकारी धन का उपयोग त्याज्य माना जाय।

(२) रचनात्मक कार्य में लगे हुए व्यक्ति 'स्वयंसेवक'-भाव रखें, अर्थात्—

लोगों को "रोजी-रोटी दिलाने वाले'
इस कार्य द्वारा 'मुनाफ़ा कमाने वाले' या
(देश के प्रचार के लिए ही सही) 'विदेशों में निर्यात करने वाले' } बनने का मोह सर्वथा छोड़ दें।

(३) ग्रामाभिमुख उत्पादन तथा (—अन्न-वस्त्र व दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं के लिये) ग्राम ताल्लुका के या क्षेत्र के स्वावलम्बन के लिये रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाई जायें।

(४) सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का संरक्षण करने वाला एक People's Moral Forcc (जनता का नैतिक शक्तिदल) खड़ा करना—यह रचनात्मक कार्य का प्रमुख उद्देश्य रहे।

(५) कार्यकर्त्ता अध्यात्मसाधना करते हुए जीवनसाधक बनें।

—विमल-वन्दन

[श्र० विमलाजी द्वारा सर्वोदय-क्षेत्र के एक वरिष्ठ लोकसेवक के प्रति गत वर्ष लिखे गये पत्र में से उद्धृत।]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्सङ्ग-प्रश्नोत्तरी

प्रश्न—'चिदाकाश में विश्व समाया हुआ है' ऐसा क्यों कहा गया ?

वि०—'घटाकाश' 'महदाकाश' चिदाकाश'—ऐसे अनेकों शब्द हैं कोई भक्तिशास्त्र के, कोई नाथ-सम्प्रदाय के, कोई तन्त्र के, कोई हठयोग के पारिभाषिक शब्द हैं। पता नहीं, प्रश्नकर्ता का ऐसे 'शून्य' व 'आकाश' शब्दों से परिचय है या नहीं !

शिवसंहिता एवं गोरक्षनाथ के ग्रन्थों में, उससे भी पहले अभिनवगुप्त एवं अन्यों के काश्मीरशैवदर्शन के ग्रन्थों में 'आकाश' एवं 'शून्य' शब्दों पर विस्तारपूर्वक विवेचन-समीक्षा-विवरण मिलता है। सरल शब्दों में देखें तो "आत्मनः आकाशः सम्भूतः" विज्ञान की भाषा में—सत्ता में जब अपनी इच्छा से ही ऊर्जा स्पन्दित होती है "The Energy is activised by self will in the ocean of Isness"—मॉरिस लिकॉस, डेविड बोम, डॉ० उम्बेर्तो, काप्रा आदि भौतिक विज्ञान के महारथियों के शब्द हैं ये। उनका कहना है कि विश्व शून्य में से उद्भूत हुआ है—"The emptiness is exploded. The Cosmos is an explosion of emptiness" "The emptiness was in Isness. "Who exploded it ?" "There is no 'who' or anybody, It is the selfwilled motion or movement on the part of the energy." अपनी इच्छा से ही सत्ता में विद्यमान इच्छा स्पन्दित हुई तब आकाश या अवकाश नाम का तत्त्व प्रकट हुआ।

अपने यहाँ (भारतीय अभिव्यक्ति में) उसे 'लीला' कहा गया है। "आत्मा में स्पन्द क्यों उठा ? उसकी लीला है यह !" "स एकाकी न रेमे। सोऽकामयत एकोऽहं बहु स्याम् प्रजायेय इति।" उसे अकेले रूप में आनन्दास्वाद नहीं हुआ, इसलिये इच्छा की कि अपनी एकता के दर्शन के लिए अनेक हो जाऊँ। इसलिए विश्व उत्पन्न किया। इसमें सबसे पहले आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश में से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल में से पृथ्वी उत्पन्न हुई।" वैदिक सृष्टि-प्रक्रिया (cosmogenesis) में आकाश में से ही क्रमशः सभी महाभूत (पांच मूलतत्त्व) एवं वनस्पति-अन्न तथा सूक्ष्म व स्थूल शरीरादि की उत्पत्ति हुई है; सूक्ष्म शरीर यानी इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार एवं इनकी सभी वृत्तियाँ तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकाश में से ही उत्पन्न हुई। अर्थात् जिसे हम शून्य-रिक्त-आकाश कहते हैं जहाँ कोई पदार्थ दिखता नहीं उसे 'रिक्त' 'खाली' मानते हैं, पर उस वस्तुतः आकाश या शून्य में सारा ब्रह्माण्ड भरा हुआ है जैसे नन्हें से बीज के भीतर की पोल में पूरे वटवृक्ष की सम्भावना (वृक्ष का सब कुछ उत्पन्न करने की शक्ति) भरी होती है। There is nothingness. (यहाँ कोई वस्तु या पदार्थ नहीं है।) इसीलिए उसे Nothingness (कुछ होना, रिक्तता) कहा जाता है। The energies are not solidified. ऊर्जायें सघन रूप में व्यक्त नहीं हैं। They are perhaps in a nebulous state) (संभवतः वे 'पलल' या अव्याकृत भ्रूण-दशा में हैं)। किन्तु समस्त सृष्टि उसमें समायी हुई है ही।

वह आकाश "चित्" चैतन्यतत्त्व आत्मा में समाया हुआ है इसीलिये "चिदाकाश" कहलाया। घट के भीतर प्रतीत होने वाला 'घटाकाश' पदार्थों के बाहर सब ओर वर्तमान "महाकाश" आदि नाम पदार्थों की अपेक्षा से होते हैं। आकाश एक तत्त्व है जो किसी सीमा से बँधता नहीं। जो व्यक्ति पदार्थों की सीमा पारकर, विचार-विकारादि सूक्ष्म द्रव्य के भी स्पर्श के परे जाकर मौन आयाम में स्थित होते हैं वे 'आकाशस्थ' हो जाते हैं, वे 'कायस्थ' 'देहस्थ' नहीं रहते, देह रहते हुए भी उनकी दशा 'विदेह' (देहातीत) होती है। कबीरजी की वाणी में इस स्थिति का बहुत वर्णन मिलता है। इस स्थिति को 'खेचरी मुद्रा' भी कहा जाता है। 'ख' यानी आकाश या गगन। संकल्प-विकल्पमुक्त चित्त दशा की आभा पूरे शरीर पर रहती है। वह उनकी जीवनमुद्रा होती है।

विचार-विकारादि की गतियाँ शान्त होने पर मौन आयाम में शून्य में चेतना स्थित हुई। वहाँ जाग कर संचरित होने वाली वैश्विक प्रज्ञा की गतियों को भी उपयोग द्वारा चंचल किये बिना शान्त होने दिया, तब वस्तुतः आकाश में स्थिति होती है। आधुनिकतम Physicists भौतिक-वैज्ञानिक कहते हैं—"From the explosion of the emptiness infinite universes have come into existence." विश्व एक नहीं अनेकों असंख्यों हैं। २४ सौरमण्डल तो वे खोज चुके हैं, और भी कितने ही सौरमण्डलों के अस्तित्व का उन्हें विश्वास है, अतः कहते हैं कि सौर-मण्डलों की भी कोई संख्या गिनी नहीं जा सकती। भारतीय भाषा में 'अखिलब्रह्माण्डनायक' "अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड जिनके रोम-रोम है"—ऐसे शब्द आये हैं। हम बड़े अहोभाव से उन शब्दों का उच्चारण करते हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर उनका अर्थ-ग्रहण नहीं करते ! शब्दों का निर्माण तो अर्थ-संकेतों को पकड़ने के लिये है, केवल बोलने के लिये नहीं। शब्द वाहन हैं, माध्यम हैं अर्थ को हमारे समीप लाने के; वे सेतु बनते है अनुभवियों और सन्तों के जीवनरस का हमें स्पर्श कराने में। अतः केवल शब्दों के छिलकों में अटक न जायें ! वे शब्द छील-छील कर उनके भीतर के रस-अर्थ का सेवन करना चाहिये। रस-प्राशन करना चाहिये। जीवन का ऐश्वर्य उस अर्थग्रहण और भावधारण में है।

इसलिये चिदाकाश में विश्व समाया है—यह रूपकात्मक वर्णन नहीं, बड़े वैज्ञानिक तथ्य का सरल निवेदन है। (It is a statement of fact, not a figurative way of putting things.)

मैंने कहा था कि यह विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय की अरुणोदय-वेला है; वह युग आ रहा है। लोगों को आणविक-नाभिकीय युद्ध (Neuclear War) की आशङ्का-विभीषिका दिखाई देती है; लोग हताश-निराश हो रहे हैं। मेरी दृष्टि को मनुष्यजाति का वह सामूहिक विनाश नहीं दीखता। मनुष्यजाति ऐसे सामूहिक आत्मघात के लिये नहीं पैदा हुई है, वैसी अभिशप्त नहीं है।

(The human race is not doomed to a collective Suicide. It has a role to play. It is a partner with the Cosmic Energy. In the play of Divine energies, we are partners of Divinity.) मनुष्य जाति को वैश्विक ऊर्जा के साथ मिल कर कुछ भूमिका अदा करनी है। दिव्य ऊर्जाओं के खेल में हम दिव्यता के भागीदार खिलाड़ी या साथी हैं।

इसलिये मुझे ऐसा दिखता है कि 'न्यूक्लियर'—युग में विज्ञान व अध्यात्म का समन्वय अटल, अनिवार्य, अवश्यम्भावी है। वह कब व किस भूमिभाग पर पहले घटित होगा—यह कहा नहीं जा सकता। उस घटना की सम्भावना (Potential) भारत में भरी पड़ी है, किन्तु इस देश के लोग मूर्च्छित हैं। ये जाग जायें तो वह समन्वय इनके लिये बायें हाथ का खेल है। भारत में इतनी जातियाँ, इतने धर्म-सम्प्रदाय, इतने प्रकार के दार्शनिक चिन्तन, इतनी परम्परायें, इतनी भाषायें एवं जीवनरीतियाँ हैं कि भारत का नागरिक अनायास ही विश्वनागरिक बन सकता है। यहाँ की अनेकविध अस्मिताओं का राष्ट्रीय एकता के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ सामञ्जस्य बैठा कर मानवीय जीवन जीना आ जाय, तो यहाँ का नागरिक अपने आप विश्वनागरिक बन जायेगा। इतनी विविधता अन्य किसी भी देश में, किसी राष्ट्र में नहीं है। इतनी बड़ी विरासत हमें मिली हुई है।

यहाँ महाराष्ट्र में मैं आप सौ-पचास व्यक्तियों के सामने बैठती हूँ तो मुझे दिखती है पूरी महाराष्ट्र-भूमि, जो सन्त ज्ञानदेव–तुकाराम–एकनाथ आदि की भूमि है, अगणित सन्तों के जीवनरस से सिंची हुई यह भूमि है, जिन्होंने अद्वैत के अधिष्ठान पर द्वैत के स्वीकार का महागान गाया है अपने भजनों में। अद्वैत-भूमिका छोड़े विना सम्पूर्ण जीवन का समग्र स्वीकार है वहाँ। "हम अद्वैत द्वारा द्वैत का आँगन बुहारते हैं"—कहते हैं श्रीनिवृत्तिनाथ एवं ज्ञानराय! प्रत्यक्ष व्यवहार्य अद्वैत-बोध की परम सीमा है। तुकाराम कहते हैं—

"बीज भून कर कर दी लाई! हमारा अब जन्म मरण नहीं!
तुका कहे हम विट्ठल के दास! पिण्ड में किया ब्रह्माण्ड का ग्रास!"

महाराष्ट्र में एवं कुछ अंशों में सौराष्ट्र में ऐसा जो अद्वैत का अधिष्ठान भक्ति को मिला है वह अन्य प्रदेशों में प्रायः नहीं दिखता।

"विष्णुमय जग वैष्णव का धर्म, भेदाभेद-भ्रम अमङ्गल!" इससे आगे कौन सा विज्ञान ले जा सकेगा? कहते हैं कि 'भेद' और 'अभेद' दोनों ही दृष्टियाँ (अपनी सीमाओं में) भ्रम-मात्र हैं, अतः अमङ्गल हैं। क्योंकि "विषय तो सभी हुए नारायण!" समस्त विश्व में विष्णु की ही सत्ता ओत-प्रोत है, अन्य-इतर कुछ है ही नहीं। 'भेद' कल्पना है, और उसकी मारक कल्पना ही 'अभेद' है। 'बन्धन' और 'मुक्ति' दोनों ही भ्रम हैं।—भारतीय चिन्तन का यह अधिष्ठान है।

[फरवरी ८९—महाबलेश्वर-ध्यानशिविर में से (मूल मराठी से अनूदित—) सङ्कलित]

भारतीय संस्कृति की भारत में दुर्दशा

(१)

आचार्यप्रवर ऋषिकल्प सन्त विनोबाजी ने भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्व-रूप से 'पञ्चगकार' (ग-अक्षर से प्रारम्भ होते पाँच तत्त्व) कहे थे— गो, गीता, गोविन्द, गायत्री, गङ्गा। उन पाँचों की आज कैसी दुर्दशा है इस पर यह पद्य रचा गया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोघाते निरता वयं प्रतिदिनं, गङ्गाऽपि हा ! दूषिता ।
गीता विस्मृतिगर्तगाऽनुदिवसं, गोविन्दचर्चा कुतः ॥
गायत्री नहि गीयते बत कथं त्रायेत घोरात् कलेः ?
लोपं हन्त गता गकारविततिः, पुण्या विनोबाऽऽहृता ॥

गोवंश की तो हत्या करने में हम दिन-पर दिन लगे हुए हैं। भीषण प्राणि-संहारक एवं अशुचि गन्दगी गङ्गा (एवं उनके सदृश अन्य भी लोकमाता नदियों—) में डाल-डाल कर हमने परम पावन गङ्गाजल को दूषित कर डाला है। श्रीमद्भगवद्गीता (में कहे गये विश्वहितकारी चिन्तन एवं शिक्षण) को विस्मृति के गर्त में धकेल दिया है, और प्रतिदिन उससे मुँह मोड़ते जा रहे हैं। जीवन का रहस्य समझाने वाले जीवनतत्त्व के समग्र-रसमय प्रतीकरूप 'गोविन्द' की तो चर्चा ही कहाँ ? 'गायन्तं त्रायते इति गायत्री' [गाने वाले का रक्षण (अहित से बचाना) करने वाली] कही गयी गायत्री (परब्रह्म का सविता रूप में ध्यान व प्रार्थना—ॐ भूर्भुवः स्वः, तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॥) का गान (अर्थचिन्तन व भावन सहित सस्वर उच्चारण) किया नहीं जाता, तो वह मन्त्र इस घोर कलिकाल के दुष्प्रभाव से बचाये कैसे ?—इस प्रकार विनोबाजी द्वारा एक साथ कहे गये ये पाँचों 'ग' जो स्मरण व सेवन से पावन करते हैं—हाय ! आज वे लुप्त हो गये हैं।

(२)

महात्मा गांधीजी ने भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये लघु-उद्योग, ग्रामोद्योग तथा कुटीरोद्योगों के संरक्षण की आवश्यकता बताई थी, और बहुत बड़े पैमाने पर चलने वाले बृहत्काय यन्त्राधारित उद्योगों को बढ़ावा न दिया जाय—इसीमें भारत की भलाई कही थी। इसके साथ ही उन्होंने गो-सेवा और कृषि-कर्म का संयोग बनाये रखने का हितकारी सुझाव व निर्देश दिया था। किन्तु उस सब के सर्वथा विपरीत ही आज भारत में बड़े उद्योगों की विपुलता है, गो-सेवा को छोड़ कर (गोवंश की हत्या, और—) रासायनिक खाद के लिये बड़ा भारी आयोजन जोर-शोर से किया जा रहा है, फिर कीट-नाशक-रसायनों के विष से मनुष्यजीवन का विपुल संहार (कीड़ों के साथ मनुष्यों का भी नाश) घटित हो रहा है। फिर कहो तो गान्धीजी की आत्मा हमारे इस भारत में कैसे दिखाई दे ? —यही इस पद्य में कहा गया है।

औद्योगीकरणं न याति विरतिं, खादी विकारं गता;
गोसेवा नहि रोचतेऽद्य, विहिता रासायनीयौर्वराः ।
कीटानां शमने मनुष्यमरणं, 'कार्बाइडे'नाहितम्,
आत्मा गाँधिमहात्मनां वद कुतो दृश्येत नो भारते ? ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३)

भारत-सरकार ने 'शिक्षाविभाग' और 'संस्कृतिविभाग' ऐसे दो अलग विभाग बना कर शिक्षा और संस्कृति का वियोग करा दिया है। इस वियोग का दुष्परिणाम क्या सामने आया है, और कोरा अक्षरज्ञान ही 'शिक्षा' नहीं है—इस तथ्य को या दृष्टि को भुला देना अनर्थकारी है—यह इस पद्य में वर्णित हुआ है :—

शिक्षासंस्कृतयोर्वियोग इति या नीतिः समासादिता
नो तत्रास्ति सुशिक्षणं तनुमनोवाचो न संस्कारिताः ।
शिक्षा नाक्षरबोध इत्यपि न हा सूक्ष्मो विवेकः श्रितः
नो शिक्षा, न हि संस्कृतिर्न विमला बुद्धिर्नवोदीयते ।।

[शिक्षा और संस्कृति का वियोग कराने वाली जो नीति अपनायी गयी है। इसमें न तो अच्छा शिक्षण हो पाता है, न शरीर-मन-वाणी को सम्यक् एवं हितकर संस्कार ही मिल पाते हैं। केवल कोरा अक्षरज्ञान ही 'शिक्षा' नहीं है—इतना सा सूक्ष्म विवेक भी नहीं रखा गया। इसलिये न शिक्षण हो पाता है, न संस्कृति की रक्षा हो रही है, न विमल बुद्धि और उसके नये उन्मेषों का उदय होने की आशा रह गयी है।]

(४)

एक बार मैं 'रथयात्रा' के दिन दर्शन के लिये श्रीजगन्नाथपुरी गयी थी। वहाँ देखा कि ध्वनिविस्तारक यन्त्रों द्वारा कान फोड़ता हुआ सा विकट नाद (शोर) फैलाया जा रहा था, उसमें श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा महान् भक्तिभाव से सब श्रोताओं-दर्शकों के हृदयों को रस-विभोर करने वाले शुद्ध-रमणीय-श्रुतिमधुर सङ्गीतमय श्रीहरिनाम-सङ्कीर्तन के बदले चाहे जो—चाहे जैसा शोर-गुल ही हो रहा था। और पूरी यात्रा (जुलूस) के अन्त में पीछे धीमे-धीमे चलते हुए कुछ थोड़े से वृद्ध लोग क्षीण स्वर में हरिकीर्तन गाते आ रहे थे। तब मेरे मन में एक प्रश्न उठा, वही इस पद्य में व्यक्त है—

आसीद् यात्रा परमविकटा कर्णविस्फारियन्त्रैः
मन्दं मन्दं हरिगुणगणः कीर्त्यते स्मातिवृद्धैः ।
क्वासि त्वं भो ! सरलसुभगे संस्कृते भारतीये ?
घोराद्घोरेऽतितुमुलरवे ? क्षीणकाये स्वने वा ।।

(अरे ! हमारी सरल सुभग भारतीय संस्कृति ! तुम कहाँ हो भला ? यह जो कान फोड़ने वाली अति तुमुल कोलाहल जैसी घोर से भी घोर ध्वनि (आवाज-शोर) है—वहाँ हो क्या तुम ? या इससे दबे हुए अतिशय क्षीण उस हरिकीर्तन-स्वर में तुम हो ?)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(५)

स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के पश्चात् भारत-शासन ने विविध प्रकारों से भारतीय कलाओं के रक्षण-पोषण-प्रसारण के लिये (अपनी बुद्धि से) यत्न करने की नीति अपनायी। किन्तु वे यत्न वस्तुतः समुचित एवं सही दिशा वाले हैं या नहीं ?—यह बड़ा विचारणीय प्रश्न है। उसी की बात यहाँ कही गयी है—

लोको जीवति वा न वोत्सवगणे भूयोऽपि संयोजिते ।
भ्रष्टा वा महिता कला सुविहितैः सम्मानदानक्रमैः ।
शिल्पानां विनयेऽपि कुत्रचिदहो शङ्का समुद्भूयते
क्वास्ति क्वास्ति कला विकारशमनी सत्त्वातिरेकं गता ।।

(तरह-तरह के (कला प्रदर्शक—) 'उत्सवों' का जो बड़े घटाटोप से आयोजन-संयोजन हो रहा है, उनके द्वारा वास्तव में 'लोक' जी रहा है या नहीं ? (या समाप्त ही हो रहा है ?) कलाओं को प्रोत्साहन देने के नाम पर जो 'सम्मान' दिये जा रहे हैं, उनके द्वारा वस्तुतः कला की महिमा बढ़ाई जा रही है या कि उन्हें भ्रष्ट किया जा रहा है ? (कला में समर्पित जीवन जीने वाले कलाकारों के चित्त में पैसे और तदाधारित प्रतिष्ठा का लोभ व स्पर्धा जगाकर और आधुनिक समाज के दूषणों का सङ्ग करवा कर कलाकारों का मूल अहित ही सम्भावित है) । इसी प्रकार अत्याधुनिक परिवेश में जो शिल्पों की शिक्षा दी जाती है—उसमें भी शिल्पशिक्षा होना शङ्कास्पद ही है। अहो ! सत्त्वातिरेक में ले जाने वाली एवं समस्त विकारों का शमन करने वाली वह भारतीय कला कहाँ है ? कहाँ है वह अब ?

(६)

केन्द्रीय शासन का नवीन गठन होने से जनसमुदाय बहुत आशान्वित हुआ है। मेरे मन में एक ही आशा सब से ऊपर झाँक रही है कि जिस बात पर स्वराज्यभावना के उद्गाता (एवं स्वराज्य पाते ही पहला कार्य गोरक्षा, गोवधबन्दी करना चाहने वाले) लोकमान्य तिलक, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी एवं जिसके लिये जीवन की आहुति चढ़ाने वाले सन्त विनोवाजी एकमत थे—एकस्वर से जो (गोवधबन्दी तुरन्त करने की बात) कहते थे—उन महानुभावों की घोर विडम्बना (जो ४२ वर्ष तक होती आयी—वह) क्या अब समाप्त हो पायेगी ? इस नवीन शासनतन्त्र में क्या शीघ्र से शीघ्र गोरक्षा सिद्ध हो सकेगी ? —

गांधी-विनोबा-तिलकोऽपि यत्र ह्येकस्वरास्तत्र विडम्बनं किम् ।
नाशं व्रजेद् भो ! नवशस्ततन्त्रे गोरक्षणं स्यात् त्वरितं सुसिद्धम् ??

(आकाशवाणी, वाराणसी से २९ दिसंबर, १९८९ को प्रसारित संस्कृत कवि-गोष्ठी में डॉ० प्रेमलता शर्मा द्वारा ये स्वरचित पद्य पढ़े गए थे।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ॐ ॥

गोकुल का आशीर्वाद

[वध-स्थल पर ले जाये जाते हुए गाय और बैल के बीच संवाद]

[१=गाय २=बैल]

१. आओ बैठो, बात करें कुछ
दुख-सुख की, जीने-मरने की।
२. बातों से अब क्या होना है,
किसको फुर्सत है सुनने की ?॥१॥
नक्कारों की धड़-धड़ में औ'
आपा-धापी की भगदड़ में।
तूती के-से क्षीण स्वरों को
कौन सुनेगा उठा-पटक में ॥२॥
१. कहते हो तुम ठीक, परन्तु
फिर भी, चुप रहने से अच्छा।
मरने से पहले अपना 'जीवन-
रहस्य' कह लें हम सच्चा ॥३॥
२. चलो यही अब होने दो,
हम-मूकों की भाषा सुनने को
मिलें नरों को नये कान औ'
संवेदन के गुर पढ़ने को ॥ ४ ॥
१. वैदिक युग की याद करो तो
[1]* जब तुम ब्रह्मज्ञान कहते थे।
सत्यकाम जाबाल-संग, वन-
में स्वच्छन्द विचरते थे ॥ ५ ॥
२. अरे! कहाँ की याद दिला दी!
वह सब सपना-सा लगता है।
फिर क्या लौट सकेंगे वे दिन !
दुख का अन्त नहीं दिखता है ॥६॥
१. माना, लौट नहीं सकते दिन
कालचक्र आगे चलता है।
फिर भी आस्था की धरती का-
सूरज कभी नहीं ढलता है ॥७॥

२. क्या कहती हो ? आस्था के अब
दिन लद चुके, न कुछ कहना ही।
उत्तम है, उसकी बातों का
मन ही के मन में रहना ही ॥८॥
१. फिर भी याद नहीं मिटती है,
'जाति-स्मृति' पेंगें भरती है।
कुछ भी कर लो, आस्थाओं की
गहरी जड़ें नहीं मरती हैं॥ ९॥
२. तो फिर चलो, जड़ों को सींचो
शायद दिन कुछ फिर ही जाएँ।
भूली भटकी भाव-बदरियाँ
जनमानस में घिर ही आएँ।१०।
१. वेदों से कुछ आगे बढ़कर
[2] नाट्यशास्त्र की बात करें हम
प्रेक्षागृह में हम लोगों के
प्रथम वास की याद करें हम।११।
२ हाँ, वह तो 'अदृष्ट'[3] कथा है
उस को भला कौन समझेगा ?
आज 'दृष्ट' का युग है भद्रे !
वह सब कोई क्यों समझेगा ?।१२।
१. हाँ, अदृष्ट' तो 'गोष्ठी'[4] के भी
नामकरण में छिपा हुआ है।
'दृष्टादृष्टों' की जोड़ी में
युग का चिन्तन भरा हुआ है।१३।
२. छोड़ो, 'दृष्ट' पकड़ कर ही हम
अद्यतनों से बात करें कुछ।
जो भाषा वे समझें, उसके
वर्णों की पहचान करें कुछ ॥१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. अच्छा, लो, कृषि में हम सबका
योगदान किसको भूला है ?
गोबर हम-तुम दोनों का, औ'
हल तुम पर ही नित झूला है।१५।

२. हल औ' हलधर तो चुनाव-
चिह्नों में शोभा पाता है।
धरती जोते 'ट्रेक्टर' तो ही
'सभ्य'-जनों के मन भाता है।१६।

१. ट्रेक्टर को जो खाद्य चाहिए
उसकी तो निश्चित सीमा है।
वहाँ कहाँ 'मण्डलमय' गति[५] जो
जीवन की सच्ची महिमा है।१७।

२. सीमा की तो कौन कहे ?
तत्काल काम चल जाने दो अब।
मांस हमारा निर्यातित कर
'तेल' करें आयातित, लो सब।१८।

१. बलिहारी इस मति की, जिसके
जीवन के प्रति नेत्र मुँदे हैं।
मण्डलमय गति भूली जिसको
तम से जिसके मार्ग रुँधे हैं॥१९॥

२. जीवन की अवगणना ही तो
सब दोषों की जड़ में दिखती।
उससे तरु में 'काष्ठ-राशि' औ
'मांस-राशि' हम-तुम में दिखती २०

१. सच कहते हो, वृक्ष-लता भी
हम-तुम-सम काटे जाते हैं।
दोनों से पैसे जो मिलते
आपस में बाँटे जाते हैं॥२१॥

२. पैसा ही क्या चरम 'अर्थ'[६] है ?
हा ! यह कैसी विडम्बना है !
पशु औ' तरु तो मानव के चिर-
सङ्गी, नहिं नवीन घटना है।२२।

१. लगता है यन्त्रों के मद में
मानव 'अर्थ' भुला बैठा है।
जो 'साधन' है, 'साध्य' उसे कह
सब सन्तुलन गँवा बैठा है॥२३॥

२. नर-बल पशुबल का सहचर बन-
कर ही यन्त्र सही चलता है।
है इतिहास सभ्यता का यह
इसमें सबका हित पलता है॥२४॥

१. आज इसी को तोड़ चला नर
जीवन-विमुख खड़ा होने को।
नर-केन्द्रित यह नई व्यवस्था
विष का बीज चली बोने को।२५।

२. यह विष केवल हम-तुम को ही
नहिं, नर को भी ले डूबेगा।
[७]रक्तबीज के सदृश यही नित-
नये अनर्थों को सिरजेगा॥२६॥

१. क्या कोई भी तरणोपाय न
आज बचा है इस विनाश से ?
देर हो चुकी बहुत, पर कहो,
कैसे छूटे नर कुपाश से ? ॥२७॥

२. बहुत कठिन है, ठहरो लेकिन
बात अभी रह गई अधूरी।
यन्त्र-सभ्यता की विनाश-लीला
की कथा हुई नहिं पूरी॥२८॥

१. अच्छा ! अब तुम मुखर हो उठे !
पहले तो कुछ कतराये थे।
मुझे बड़ा सुख इसमें भैया !
कब-से तुम सहते आये थे !!२९॥

२. तुमने जब से छेड़ दिया है,
तब से सत्य कथा कहने को।
मचल उठा है जी, सब कुछ ही
लाग-लपेट बिना कहने को॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. यह शुभ है, हम दया न माँगें,
पर मनुष्य को उसका ही हित
कह डालें, फिर जो चाहे सो
करे, रहें हम सदा सत्य-रत ।३१।
२. हम दोनों की बातें सचमुच
नर के ही हित कही गई हैं ।
उसके और हमारे हित में
कुछ भी तो टकराव नहीं है ।३२।
१. चलो, आज के ही युग का
इतिहास बन्धु तुम कह डालो ।
भारत में कितना वचनभङ्ग
है घटित हुआ, सब कह डालो ।३३।
२. पहले कुछ इतिहास पुरातन
कह लूँ तब फिर अधुना की ।
बात करेंगे हम-तुम मिलकर
वचनभङ्ग की घटना की ।। ३४।।
१. चलो बढ़ो फिर आगे, सुन लूँ
क्या कहने को शेष रह गया ?
दुर्गति की लम्बी यात्रा में
कौन पड़ाव विशेष रह गया ? ३५
२. हम तुम थे अवध्य घोषित,
कुछ मुस्लिम युग में हुआ प्रहार ।
उसका सिक्खों ने डटकर प्रतिकार
किया था, सत-बल धार ।।३६।।
१. सभी प्रहारों के विरोध में
सिक्खों का उज्ज्वल बलिदान ।
भूल नहीं सकते हम-तुम गुरु-
गोविन्द सिंह का यशोगान ।।३७।।
२. सच है, पर भूले अकबर को,
जिसका निकला था फ़रमान ।
हमें अवध्य पुनः घोषित कर
जिसने पाया था बहुमान ।।३८।।

१. याद करो फिर अँगरेजों के
शासन में नव-तन्त्र चला था ।
हिन्दू-मुस्लिम को बिलगाने का
नवीन षड्यन्त्र चला था ।।३९।।
२. उस कुचक्र में सच हम लोगों
का शोषण भरपूर हुआ था ।
हमें बनाकर मुहरा, अँगरेजों
ने अपना काम किया था ।।४०।।
१. लोकमान्य था तिलक कि जिसने
अँगरेजों को था ललकारा ।
'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार'
दिया, उसने यह नारा ।।४१।।
२. 'स्वराज्य होते ही गोहत्या-
पाँच मिनट में बन्द करेंगे !'
ऐसा भी वह कहता था, हा !
कैसे उसको भूल सकेंगे ?।।४२।।
१. उसके बाद महात्मा गाँधी
क्या कहते थे–याद किसे है ?
'गोहत्या मेरी हत्या है'—
चिन्ता उसकी आज किसे है ? ४३
१. स्वामी करपात्री जी औ' प्रभु-
दत्त ब्रह्मचारी जी ने भी ।
कितने सत्याग्रह-उपवासों की
शृङ्खला महान् बना दी ।।४४।।
२. सन्त विनोबा भी आखिर में
सब कुछ तज गोरक्षा के ही ।
व्रती बने थे, पर उन को तो
'भारतरत्न' बना कर के ही–४५
शासन ने दे दी तिलाञ्जलि;
कभी 'धर्म' तो कभी 'अर्थ' की
आड़ लिया करते शासकजन
शङ्कायें बस उठा व्यर्थ की ।।४६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. देवनार-सत्याग्रह अब भी
सतत चला करता है, देखो।
'गो-गीता-पदयात्रा' कितनी
निकली हैं—इनको भी देखो ४७

२. कहीं किसी की पूछ नहीं है
जिनके हाथों में अधिकार।
उनको केवल 'अर्थ' सूझता,
अल्पदृष्टि कैसी दुर्वार ॥४८॥

१. चलो, अर्थ को ही समझें हम,
ऊर्जा और उर्वरक लेकर।
इन दोनों में गो-कुल द्वारा
जो कुछ सम्भव उसे कूत कर ४९

२. अधुना अर्थ-व्यवस्था में तो
पूँजी की ही है भरमार।
उसमें जो पूँजी विदेश की,
उसकी तो नित-नई बहार ॥५०॥

१. कीटनाशकों-उर्वरकों के
रसायनों के बृहदुद्योग।
अरबों-खरबों की पूँजी से
चलते, उनका जो उपयोग ॥५१॥

आज हो रहा, वह जीवन का
महावधिक है, यह मत भूलो।
त्वरित लाभ की मृगमरीचिका,
उसके धोखे में मत फूलो ॥५२॥

२. सच कहती हो, धीमी गति से
ये सब हरते जीवन-सार।
दुर्घटना हो जाए-तब तो
करते अमित जीव-संहार ॥५३॥

१. गोबर-मूत्र हमारे उर्वर-
कारी, कीट-विनाशक भी हैं।
धरती को देते नवजीवन
दोषरहित, गुणधारक भी हैं५४

२. इतना ही नहिं, विकिरण को भी
रोक सके वह शक्ति भरी है।
हम लोगों के गोबर में औ,
श्वासक्रिया में,-बात खरी है।५५।

१. यह सब तो है ठीक, किन्तु यह
पूँजी का जो निकृष्ट वैभव।
उसके चलते गुण-दोषों की
विवेचना बन गई असम्भव ॥५६॥

२. सार यही तब तो निकला अब
हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न नहीं है।
पूँजी औ' श्रमजीवन के बिच
किसे चुनें? बस प्रश्न यही है।५७।

१. यह विश्लेषण सच्चा है, पर
कौन इसे देखे—समझेगा?
सब ने पूँजी का मद चाखा,
कौन इसे परखे-समझेगा? ॥५८॥

२. तुमने ही तो कहा कि मरने-
से पहले सब कुछ कहना है।
फिर क्यों घोर निराशा के स्वर?
हमें अविचलित ही रहना है ५९

१. ठीक कहा तुमने, हमको तो
सत्य बात कह जाना है।
कुछ भी करे मनुष्य, हमें तो
सत्पथ पर ही जाना है ॥६०॥

२. तब तो, बातें बची-खुची जो
उनको भी कह डालें हम।
हम लोगों पर बीता जो अन्याय
उसे कह डालें हम ॥ ६१ ॥

१. याद मुझे आता है हम लोगों-
के खाद्यों का निर्यात।
जिससे हमें पालना दूभर,
यह कैसा अति-मार्मिक घात? ६२।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. कानून बने जो गोरक्षा-हित
उनमें छिद्र भरे कितने ?
उन छिद्रों की आड़ ले रहे
मनुज छल-भरे हैं कितने ? ।।६३।।
१. गाय 'दूध का यन्त्र' नहीं है,
उसकी सत्ता है व्यापक।
उसे यन्त्र समझो मत मानव !
यह चिन्तन जीवन-घातक ।।६४।।
२. यह तो है ही, फिर हम लोगों-
की नस्लों का किया विनाश।
नस्ल विदेशी बढ़िया मानी
यह भी कैसा सत्यानाश ।।६५।।
१. यदि विदेश की नस्ल बड़ी है,
धरा यहाँ की यदि घटिया है।
तब तो मनुजों को विदेश की
नस्ल मिले-यह भी बढ़िया है !!
२. सच कहती हो किन्तु आज भी
मनुज कहाँ इस धरती का है ?
चिन्तन-भावन सब कुछ उसका
बाहर की ही धरती का है।६७।
१. बाहर की धरती में भी तो
टॉलस्टॉय रस्किन जैसे।
उपजे जीवन-रसिक कि जिनकी
सुध भी नहीं हमें, कैसे ? ।।६८।।
२. स्वातन्त्र्योत्तर-काल बली है,
जिसमें यह सब कुछ निपजा है।
जो विदेश के शासन में हो-
सका न, वह सब अब उपजा है ६९
१. चिन्तन का दासत्व सुनो —
प्रत्यक्ष गुलामी से बढ़कर है।
उसका ही परिणाम बोलता-
'सभ्य'-जनों के सिर चढ़कर है।७०।

२. इसीलिये गोधन की चिन्ता
दकियानूसीपन कहलाती।
'बाघ-शेर-सूअर की चिन्ता
'जीवदया' का दर्जा पाती ।।७१।।
१. क्यों भूले हो-हम 'बहुसंख्यक',
'अल्पसंख्यकों' को लेकर।
हमें भूलना ही 'फ़ैशन' है,
इसे त्याग दें जन क्योंकर ? ।७२।
२. उतरन-चिन्तन से उबरें जब
शासक, नेता, बुद्धिधनी।
तब कुछ बिगड़ी बात बनेगी
पनपेगी न कुमति इतनी ।।७३।।
१. तब यह भी मति उपज सकेगी
किस प्रकार नव-तकनीकों से
निर्मल यन्त्र-व्यवस्था सम्भव
मेल रखे जो हम-जैसों से ।।७४।।
१. छोड़ो, किन्तु कहीं तो शायद
कुछ भारत का सत्त्व बचा हो।
उसे हमारी बात समर्पित
जिसको जीवन-तत्त्व पचा हो ७५
२. जय बोलें हम समग्र जीवन
की ! शुभ-सुन्दर-चिन्मय की !
जिसके साथ सदा पनपी है
अभिन्नता शुचि मृण्मय की ।७६।
१. चलो कह लिया जो कहना था,
अब हममें दुख-लेश नहीं है।
मरना तो है ही, पर अब कुछ
कह देने को शेष नहीं है ।।७७
२. चिन्ता है बस एक कि यदि हम
नष्ट हुए तो नर-समुदाय।
नष्ट हो रहेगा, यह निश्चित
उसका कहीं न तरणोपाय ।।७८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. स्थूल ही नहीं, सूक्ष्म नाश की
बात कही है, यह समझें तो।
शायद उपजे बुद्धि कि जिससे
जीवन-मर्म कहीं समझें वो।७९।

२. एक बात अन्तिम कहता हूँ—
मानव! तुम तो मतवाले हो।
घोर प्रकृति-दोहक बनकर तुम
हाय! भयङ्कर मद पाले हो।८०

१. शाप नहीं देते हम, नर! तुम स्वयं सत्य को भजो परख कर।
हम तो नित्य असीसेंगे ही तुमको मनु का पुत्र समझ कर॥ ८१॥

टिप्पणियाँ

*१. छान्दोग्य उपनिषद् (४।४-५) में उल्लेख है कि सत्यकाम जाबाल को गुरु-आचार्य ने चार सौ गायों के साथ वन भेज दिया था; और कहा था कि ये एक सहस्र हो जाँय, तब यहाँ लौटना। जब वे एक सहस्र हो गयीं, तब एक बैल ने ही सत्यकाम को बताया, और ब्रह्मोपदेश भी दिया।

२. सर्वलक्षणसम्पन्ने कृते नाट्यगृहे शुभे। गावो वसेयुः सप्ताहं सह जप्यपरैः द्विजैः॥ (ना० शा० ३।१) कहा गया है कि नाट्यगृह (सभी सुलक्षणों से युक्त, विधान के अनुसार) बन जाने पर उसमें सबसे पहले एक सप्ताह तक गायें निवास करें, उनके साथ गायत्री-जप करते हुए ब्राह्मण वहाँ रहें। इस प्रकार गायों के श्वास व गोबर आदि से वह स्थान बाह्य रूप से शुद्ध होगा, एवं गायें निश्चिन्त भाव से बैठेंगी—सुख से रहेंगी, तब ब्राह्मणों द्वारा गायत्री-जप व घोष होता रहेगा एवं शुद्ध चिन्तनमय जीवन जिया जायेगा—तो उस स्थान के वायुमण्डल में शुद्ध स्पन्दन बने रहेंगे। इस प्रकार उस भवन एवं भूमि की अन्तर्बाह्य शुद्धि होने पर ही वह स्थान कलाकार्य के योग्य बनेगा।

३. भारतीय चिन्तनधारा में प्रत्येक कर्म के दो स्तरों के फल उत्पन्न होना देखा गया है १. दृष्ट—जो स्थूल रूप से दिखाई देता है—जैसे गायों के श्वास-गोबर-मूत्र आदि से वातावरण की शुद्धि (कीटाणु-रहित होना, आणविक-दूषण से रहित होना, त्वचा मुलायम एवं नीरोग होना इत्यादि) २. अदृष्ट—फल वह है जो सूक्ष्म है, बाहरी इन्द्रियों को दिखाई नहीं देता, तुरन्त पकड़ में नहीं आता, और कब, कैसे, कहाँ वह फलेगा—इसका कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता। किन्तु किसी न किसी रूप में वह फल मिलता अवश्य है, उसे स्थूल भाषा में 'पुण्य' या 'पाप'—रूप से कहा गया। यों भी- जिस धरती पर अच्छे कार्य होते रहे हों वहाँ बाद में भी रहने वालों को सुख-अनुभव होता है, चित्त प्रसन्न रहता है, अच्छे विचार आते हैं, और जहाँ क्रूर-व हिंसक घटनायें होती रही हों वहाँ वातावरण में बेचैनी, दुःख, क्रूरता-भरे स्पन्दन तैरते हैं यह अनुभवसिद्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. **'गोष्ठी'** शब्द का भी अर्थ है वह स्थान जहाँ पर गायें बैंठती हों। प्राचीन-काल में ऋषि-मुनि एवं चिन्तक-मनीषी जन चिन्तन एवं चर्चा के लिये, ग्रन्थ-प्रणयन के लिये वह स्थान चुन कर बैठते थे जहाँ पर वन में विचरती गायें स्वाभाविक रूप से आ कर बैंठती-विश्राम करती—आराम से उठती-बैंठती-जुगाली करती रही हों। उसी स्थान पर चिन्तन करने से,—प्रश्नोत्तर व चर्चा-विचारणा करने से बुद्धि सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरों तक कार्य करने या पहुँचने में समर्थ बनेगी ऐसा अनुभव था। ऐसे सूक्ष्म-चिन्तन के लिये होने वाली बैठकों को ही 'गोष्ठी' कहा गया था।

५. **मण्डलमय गति**—बीज से वृक्ष, वृक्ष से पुनः बीज उत्पन्न होने के समान चक्र चलना। गोवंश के रूप में (बहुत स्थूल दृष्टि से भी देखें तो) ऊर्जा की मण्डलमय गति बनी रह सकती है—आगे-आगे बछड़े-बछिया-गाय-बैल पैदा होते रहने से उनके गोबर-मूत्र आदि से खाद व इंधन, दूध से पोषण, बैलों द्वारा खेती और भार-वहन आदि का अक्षय क्रम चलता रह सकता है।

६. **अर्थ**—इस शब्द का पहला अर्थ है चाहने योग्य या चाही गयी वस्तु, या वह वस्तु जिससे कामना पूरी होती हो; आवश्यकता की पूर्ति होती हो। उसका एक साधन या माध्यम होने के नाते ही 'धन' को 'अर्थ' कहा गया। धन भी केवल 'पैसा' नहीं;—'जीवन का उपाय' धन शब्द का अर्थ है। सम्यक् व स्वस्थ मानव जीवन के लिये सबसे पहला उपाय गायों का दूध व गोबर-मूत्रादि तथा बैल आदि को समझा गया—इसीलिये धन का पहला पर्याय 'गोधन' हुआ था; समृद्धि की गणना या माप की इकाई गोधन ही बना था।

७. **रक्तबीज**—'दुर्गासप्तशती' में आये एक असुर का नाम—जिसकी गर्दन या कोई अङ्ग काटने पर जितने रक्तबिन्दु धरती पर गिरते थे उतने ही नये असुर (उसी पहले के समान बलशाली) पैदा हो जाते थे। उनको भी काटने पर फिर उनके रक्त की बूँदों से और-और उतने वैसे ही राक्षस पैदा होते जाते थे। रक्त का कण ही मानो बीज बन जाता था। इसी दृष्टान्त को ले कर एक से असंख्य की उत्पत्ति में 'रक्तबीज' की उपमा दी जाती है।

८. **देवनार-सत्याग्रह**—बम्बई के निकट 'देवनार' नामक स्थान पर—जहाँ बड़े पैमाने पर बैलों के वध का कत्लखाना है (बहुत बड़ी संख्या में प्रतिदिन वहाँ बैलों का वध हो रहा है) वहाँ—सन्त विनोबाजी ने ११ जनवरी १९८२ से सतत सत्याग्रह (वध रोकने के लिये) आरम्भ कराया था। महाराष्ट्र-गुजरात एवं देशभर से गोरक्षा-कार्यरत सर्वोदय-सेवकों का वहाँ जाना एवं क्रमिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रृंखला में सत्याग्रह अब तक सतत चल रहा है, पर उसकी कोई परवाह शासनतन्त्र को नहीं रही है।

९. बाघ-शेर जंगली सूअर आदि वन्य पशुओं की तथा ह्वेल आदि समुद्री प्राणियों की सुरक्षा के लिये 'जीवदया' के नाम से बड़े समारम्भ से प्रयत्न हो रहे हैं; वह भी होने ही चाहियें इसमें सन्देह नहीं, किन्तु उसके साथ ही उस राशि का दसवाँ-बीसवाँ भाग भी यदि गोवंश की रक्षा एवं गाय-बैलों की उत्तम भारतीय नस्लों की सुरक्षा के लिये व्यय हो तो मनुष्य जाति के लिये बहुत उपकारी होगा।

निवेदन

काव्य नहीं यह, बारह वर्षों का मन्थन है उफन चला।
घुटन भरी थी जो अन्तस् में उसका लावा बह निकला॥

समानधर्मा होंगे जो भी, उनको यह रुचिकर होगा ही।
उदासीन जन को शायद कुछ विचलित कर डाले अब भी॥

सत्याग्रहरत आत्मीयों के हित ये बरसे हैं शोले।
उनकी दीर्घ तपस्या अब तो फल लाये, मधुरस घोले॥

शासन को है स्मरण दिलाना वादे पूरे करने का।
बिना कठोर सत्य को पाले, यह कलङ्क नहिं मिटने का॥

बरस अठारह तक गोसेवा का प्रसाद छक-छक पा कर।
मेरा अन्तस् भीग उठा है गौ की करुणा को छू कर॥

भीगे अन्तस् की वाणी यह मरुओं का सिञ्चन कर दे।
संस्कृति के चिन्तक-भावक जन के मानसघन को भर दे॥

कुमति दूर हो, भावजगत् में सुमति-समीर सदा सरसे।
सूखी बंजर धरती में भी गौ की करुणा नित बरसे॥

'आम्नाय'
२०९।१, नन्दनगर के पास, करौंदी
वाराणसी—२२१००५

निवेदिका—
प्रेमलता शर्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सविनय सूचना

सहृदय पाठकों के प्रति सविनय सूचना है कि इस वर्ष—इस अङ्क से नये आकार में प्रकाशित हो रहा यह 'जीवन-परिमल' श्रद्धेया विमलाजी के सर्वहितैषी चिन्तन की सर्वदा जीवनोपयोगिनी लेखमाला के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इसका प्रत्येक अङ्क अपने-आप में पूरा होते हुए भी क्रमशः संगृहीत होने पर लगातार पुस्तकमाला-रूप बनेगा। अब यह केवल सामयिक पत्रिका-मात्र नहीं है। अतः इस पर तदनुरूप अवधान देने एवं शुभचिन्तन के हितावह प्रसार-सञ्चार के लिये अपने मित्रवर्ग में भी इसे दे कर इस मानव-हित-अभियान में सहयोग की कृपा प्रार्थित है।

प्रार्थिनी—सम्पादिका

© प्रकाशक—विमल-प्रकाशन-ट्रस्ट व्यवस्थापिका-सम्पादिका—डॉ० ऊर्मिला शर्मा

❊ किसी भी प्रकार का विज्ञापन या प्रचार नहीं ❊

प्राप्तिस्थान एवं पत्र तथा मूल्यादि भेजने का पता—
शिवकुटी, आबू पर्वत 307501
'आम्नाय', 209/1 करौंदी
डाक का० हि० वि०, वाराणसी ५
२२१००५

वार्षिक मूल्य—रु० २५ मात्र,
एक प्रति—रु० ७+डाकखर्च

प्रकाशन—वर्ष में प्रायः चार बार, मुद्रक—तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी

कृपया शुल्क M. O. या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजें, चेक नहीं। एवं M. O. के सन्देश-स्थान में प्रेषक का नाम व पता स्पष्ट अक्षरों में अवश्य लिखें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अङ्कुर-सिञ्चन

"जन्म से तुम हिन्दू सनातनी हो, या सिख-जैन-बौद्ध हो, मुसलमान हो या ईसाई हो! घर के भीतर वही रहो, निजी जीवनचर्या में अपने-अपने सम्प्रदाय के संस्कारों के आचार-व्यवहार पालो अवश्य, किन्तु घर से बाहर निकलो तब तुम खालिस 'इन्सान' रहना! घर से बाहर तुम केवल 'मनुष्य' हो, जिस देश में रहते हो—वहाँ के नागरिक हो! विश्वमानव हो! वर्तमान और भावी मानवसमाज के घटक अङ्ग हो!—यह न भूलो! अतः घर से बाहर आते समय अपने साम्प्रदायिक 'रंग' का चश्मा चढ़ा कर न निकलना! खुली आँख से देखना! खुले दिल से सब व्यवहार करना!

जिस घर में जन्मे हो उसके अनुसार घर के भीतर और बाहर भी निजी खान-पान की शुद्धि अवश्य रखना; किन्तु घर से बाहर आने पर यानी अन्य मनुष्यों के साथ सम्पर्क के समय तुम केवल 'मानव' रहना! जो भी बोलो या करो—वह मानवता के नाते ही कहना-करना! व्यवहार का अधिष्ठान हो—एकता! एक ही परमात्म-सत्ता की विविध अभिव्यक्ति है समस्त सृष्टि—यह दृष्टि स्वच्छ बनाये रखना!

दृष्टि बदलेगी तो दर्शन बदलेगा। वृत्ति बदलेगी तो व्यवहार बदलेगा। वही परिवर्तन होगा। वही क्रान्ति समग्रजीवन में लाने की आवश्यकता है आज समाज में। व्यवहार 'मनुष्य' का 'मनुष्यों' के साथ रहे। सृष्टि के एक अङ्ग का अन्य अङ्गों के साथ व्यवहार हो!—इसी नाते देखो प्रकृति को—जो उससे लो उसकी पूर्ति भी साथ-साथ करने का उपाय करो! लूट-खसोट या नोंचने की वृत्ति नहीं रह सकती यदि प्रकृति को, धरती को, अपनी 'माँ' समझो, सब मनुष्यों को अपने परिवार के सदस्य समझो, और अन्य सभी प्राणियों, वृक्षों, नदियों, पहाड़ों, समुद्रों तक को अपने सङ्गी-साथी समझो।

"पूरी वसुधा एक कुटुम्ब है, और तीनों भुवन (नीचे, मध्य के एवं ऊपर के समस्त सृष्टि-मण्डल) हमारा स्वदेश है"—यह दृष्टि देने वाली भारतीय संस्कृति किसी सम्प्रदाय-विशेष की बपौती नहीं, सम्पूर्ण मनुष्यजाति के लिये हित-निर्देशक दर्शन है।

[श्र० विमलाजी के युवकों के प्रति स्नेह-संवाद में से]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi